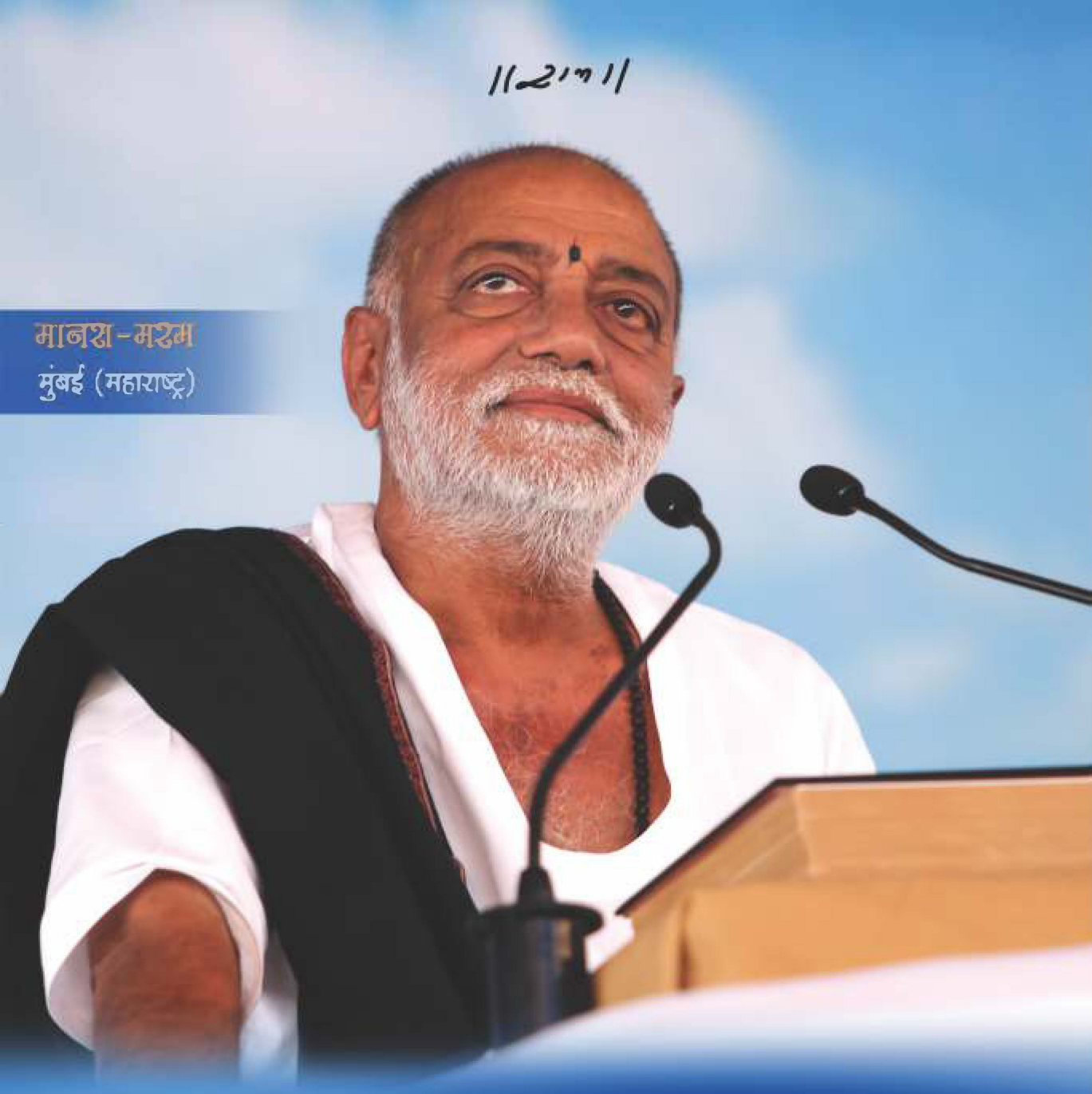

मानस-मरम
मुंबई (महाराष्ट्र)

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू।।
निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा।।

१. पूरा 'मानस' एक मार्मिक शास्त्र है, एक मर्मग्रंथ है
२. अहल्या साधना की, शबरी आराधना की और त्रिजटा उपासना की मूर्ति है
३. सत्संग से कर्म का मर्म समझ में आ सकता है
४. प्रसन्नता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है
५. शिक्षा सबसे लो, दीक्षा कोई एक से लो, भिक्षा केवल अपने सद्गुरु से लो
६. रामकथा धार्मिक सम्मेलन नहीं है, प्रेमयज्ञ है
७. भजनानंदी वैराग का मरम खोल सकता है
८. परम तत्त्व रसरूप है
९ मरम जानने के लिए किसी अधिकारी के पास जाना, अधिकारी होकर जाना

|| रामकथा ||
मानस-मरम

मोरारिबापू
मुंबई (अंधेरी)
दिनांक : ११-०१-२०१४ से १९-०१-२०१४
कथा-क्रमांक : ७५५

प्रकाशन :
अगस्त, २०१४

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने मुम्बई (अंधेरी) में ता. ११-०१-२०१४ से १९-०१-२०१४ दरमियान 'मानस-मरम' रामकथा का गान किया। 'पूरा 'मानस' एक मार्मिक शास्त्र है, एक मर्मग्रंथ है', ऐसा सूत्रपात करते हुए बापू ने 'मानस' अंतर्गत प्रयुक्त 'मरम' शब्द को लेकर नव दिन तक विविध कोण से मरम के बारे में अपना दर्शन प्रकट किया।

आध्यात्मिक क्षेत्र का बड़ा प्यारा शब्द 'मरम' या 'मर्म' को मोरारिबापू ने अर्थघटित किया और हेतु, भेद, रहस्य जैसे 'मर्म' के कई अर्थों को उद्घाटित भी किया। तदुपरांत बापू ने जीव का मर्म क्या है? जीवन का मर्म क्या है और जगत का मर्म क्या है? ऐसे सवाल भी किये एवम् उसके सहज-सरल बानी में उत्तर भी दिये। बापू का निवेदन रहा कि, ''जीव का मर्म सत्य है, जीवन का मर्म प्रेम है और जगत का मर्म है करुणा। जीव सत्य है, प्रेम नहीं तो जीवन का कोई अर्थ नहीं और जिसको हम जगत कहते हैं ये उनकी करुणा है।''

कर्म के मर्मों को समझाते हुए बापू ने मानसिक, कायिक और वाचिक जैसे कर्म के तीन क्षेत्रों को रेखांकित किया, साथ ही यह तीनों कर्मक्षेत्रों का मर्म सदृष्टांत व्यक्त किया। बापू ने कहा, सत्संग से चिंतन की दिशा बदलती है और मानसिक कर्म का मर्म समझ में आता है। शारीरिक कर्म का यही मर्म है कि हम करने योग्य कार्य करे, खाने योग्य खाये, पीने योग्य पीए। वाचिक कर्म का मर्म है विनय से बोला जाय, सम्यक् बोला जाय, सत्य बोला जाय, प्रिय बोला जाय।

'परम तत्त्व के मर्मों को हमारे कर्मों से नहीं पाया जाता, केवल कृपा से पाया जाता है।' ऐसे अपने सूत्रात्मक निवेदन को समर्थन देने हेतु बापू ने 'उत्तरकांड' के प्रसंग का स्मरण किया कि भगवान जब एक से अनंत हो जाते हैं, सबको बिलग-बिलग रूप से मिलते हैं, तब उनके मर्म को कोई भी नहीं जानते। मर्मोद्घाटन के परिणाम को भी बापू ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया कि मर्म जान लेने के बहुत फायदा भी होता है और कभी-कभी भेद जानने से नुक्सान भी होता है। मर्म किसी सद्गुरु से जानना। संसारी लेवल पर किसी से मर्म जानने की कसरत मत करना।

'रामचरित मानस' के विभिन्न पात्रों और प्रसंगों के परिप्रेक्ष्य में इस कथा अंतर्गत मर्म के संदर्भ में मोरारिबापू का तात्त्विक दर्शन प्रकट हुआ। साथ ही वाक्प्रवाह में 'श्रीमद् भगवद्गीता' और 'महाभारत' का भी सहज स्मरण होता रहा।

– नीतिन वडगामा

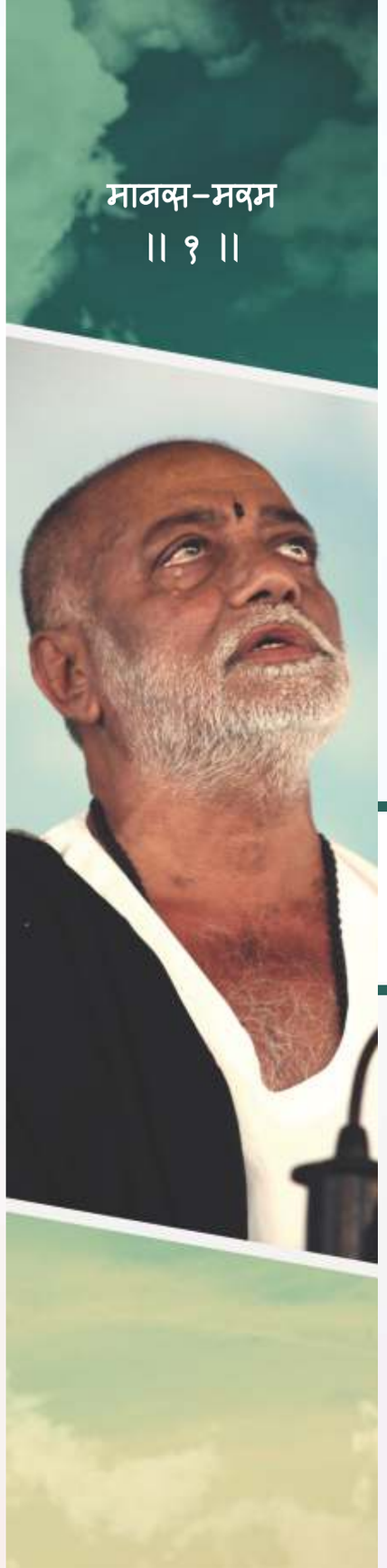

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू।।
निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा।।

बापू, भगवत्कृपा से फिर एक बार मुंबई नगरी में रामकथा को केन्द्र में रखते हुए सत्संग का आरंभ हो रहा है तब कथा के प्रथम दिन कथा में उपस्थित सभी श्रावक भाई-बहनों को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। टी.वी. के ज़रिये श्रवण करनेवाले सभी श्रोतागणों को भी मैं प्रणाम करता हूं। भारतीय विद्याभवन के प्रांगण में ये तीसरी बार रामकथा पर सत्संग हो रहा है। यहां के कथा प्रेमी कुछ युवान भाईयों की मांग थी और एक परिवार केन्द्र में रहे, बाकी सब जुड़ गये और इस कथा का आपका मनोरथ चरितार्थ होने जा रहा है। नव दिन में मेरी व्यासपीठ आपकी कुछ ग्रंथियां तोड़ दे तो भी मैं सफल हूंगा। मैं इस ग्रंथ को लेकर इसलिए घूम रहा हूं कि हमारी ग्रंथियों से हम मुक्त हो।

पूरा 'मानस' एक मार्मिक शास्त्र है, एक मर्मग्रंथ है

कथा से गुरुकृपा से मुझे सूत्र की प्राप्ति होती है। तो, इस बार की नवदिवसीय रामकथा का केन्द्रीय विचार होगा, 'मानस-मरम'। यद्यपि शब्द तुलसीदासजी ने 'मरम' यूझ किया है, अर्थ मर्म ही है। बहुत बार मरम का प्रयोग 'मानस' में हुआ है। प्रसंग-प्रसंग पर 'रामचरित मानस' के 'बालकांड' में मरमों की चर्चा है। 'अयोध्याकांड' में मरमों की चर्चा है, 'अरण्य' में भी है। 'सुन्दरकांड' में भी मर्म का उल्लेख है। 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड' में भी है। पूरा 'मानस' एक मार्मिक शास्त्र है, एक मर्मग्रंथ है। 'मर्म' शब्द के कई अर्थ शब्दकोष में आपको प्राप्त होगा, लेकिन यहां 'मर्म' शब्द केन्द्र में रखकर इसलिए बोलना चाहता हूं कि मर्म को कई एंगल्स से हम देखेंगे। लेकिन मेरा इरादा रहेगा मर्म मानी रहस्य।

हमारी साधनापद्धति में, हमारे अध्यात्मक्षेत्र में एक रहस्यवाद बड़ा गोपनीय वाद है। और जब रहस्यवाद की चर्चा होती है तब चार वस्तु को केन्द्र में रखा जाता है। जीव का रहस्य क्या है? हमारे जीव का मर्म क्या है? हम यहां क्यों है, क्यों आये हैं? इस पृथ्वी पर हमारी जरूरत क्या थी? क्या हम यहां नहीं आते तो दुनिया नहीं चलती थी? इसके पीछे कौन रहस्य काम कर रहा है? यद्यपि गुरुकृपा के बिना ये सभी रहस्य का उद्‌घाटन करीब-करीब असंभव है। लेकिन कुछ तो मर्म होगा इसके पीछे। तो, जीव जिसको उपनिषद 'अहम्' कहकर पुकारते हैं, महर्षि रमण निरंतर इस शब्द पर डटे रहे 'कोऽहम्? कोऽहम्?' मैं कौन? मेरा यह वजूद क्या? मैं यहां क्यों हूं?

तो, एक, जीव का मर्म क्या है? प्रत्येक व्यक्ति सोचे। दूसरा मेरा पडाव है, हमारे जीवन का मर्म क्या है? जीव यानी यहां आत्मा। तो, कोई मर्म होगा, कोई कारण होगा इसके पीछे। कोई रहस्य होगा। दूसरा बिंदु, अब आ ही गये हैं तो फिर जीवन का मर्म क्या है? कौन मर्म सुलझाये? अथवा तो ये मर्म की बात समझ में आये तो हमें जीवन जीने की एक अच्छी राह मिल जाय। उसके बाद तीसरा स्थान मेरी समझ में आता है कि जगत का मर्म क्या है? ये जगत क्यों है? ये पृथ्वीनामक ग्रह न बनाया होता तो नहीं चलता? यद्यपि विज्ञान खोज में है कि कई पृथ्वियां है। कितनी आकाशगंगायें खोजी जा रही है। इस जगत का रहस्य क्या है? और उसके बाद चौथा पड़ाव है और मेरी समझ में ये आखिरी पड़ाव है और वो है, परमात्मा का मर्म क्या है? जगदीश का मर्म क्या है? 'रामचरित मानस' में तो लिखा है कि तेरा मर्म पता नहीं लगता, तू क्या है? और हमारे सूफी लोग भी गाते हैं, 'तू है नहीं और हर जगह भी है।'

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।

समझ में नहीं आता, उलझे हुए हैं हम! 'रामचरित मानस' में तो लिखा है -

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।

तू दृष्टा है, तू साक्षी है। तू सबसे प्रमाणित डिस्टन्स रखे हुए कोई परम तत्त्व है। और तेरे कारण ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाच रहे हैं। सबको तू नचाता है। ये लोग भी तेरा मर्म नहीं जान सकते। ये तीन सत्ता भी तेरे मर्म को नहीं जान पाई, तो ओर तो किस खेत की मूली! तेरे मर्म को वो जान सकता है, जिसे तू जनाना चाहे।

तो, इसी जीव का मर्म, जीवन का मर्म, जगत का मर्म उस परम तत्त्व का मर्म जानने के लिए हमें 'रामचरित मानस' के करीब-करीब छ कांडों में जहां-जहां 'मर्म' शब्द का उल्लेख है, इसको बहुत संपन्न दृष्टि से

देखना पड़ेगा। धैर्य से देखना पड़ेगा। ये बात थोड़ी भी समझ में आ जाय, जितनी मात्रा में तो मुझे लगता है, कई विकृतियों के कारण हम टेन्सन में है उसमें हमें मार्गदर्शन मिले।

यहां मैंने एक पंक्ति ली है, उनमें तीन शब्द जुड़े हैं 'आराधना', 'साधना', 'उपासना', 'मानस' के तीन शब्द। हम ध्यान, जप, बंदगी सब करते हैं? उन सबका मर्म क्या है, पार्वती की परीक्षा करनेवाले ने पूछा है भवानी को, 'केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।' तू किसकी आराधना करती है, तू क्यों जप, तप, ध्यान करती है? तू चाहती है क्या? 'हम सन सत्य मरमु किन कहहू।' हमारे पास तू सत्य मरम क्यों नहीं कहती? क्या रहस्य है इस साधना के पीछे?

बहुत से क्षेत्रों के अंदर हमें ऊतरना पड़ेगा। आप कथा क्यों सुनते हैं? और सुनते हैं, तो मरम भी पकड़ना चाहिए। ये जीव का मर्म, ये जीवन का मर्म तो ही जानने में आये ऐसा लिखा है, लेकिन हरिनाम से सब मर्म समझ में आता है। ये मेरा कुछ अनुभव कहूं तो हरिनाम से सब मर्म समझ में आता है। आप कहेंगे ये कैसे हो सकता है? मेरा मूल तो वही है हरिनाम। कई मारग है इन मर्मों को

समझने का, लेकिन एक बहुत सरल-सहज साधन है गुरुकृपा से प्राप्त हो जाय तो हरिनाम, सभी रहस्यों का उद्‌घाटन हो जाएगा।

धृतगति मार्ग, वहां थाम्बु नका।

जब तुम्हें स्पीड में जाना है तत्त्व को पाने के लिए और श्रेष्ठ मारग है, तो 'थाम्बु नका। रुको मत।' मुझे लगा ये बहुत प्यारा सूत्र है। जीवन की साधना का मारग गुरुकृपा से तेजगति से जा रहा है, आनंद आ रहा है हरिनाम का, संतसंग का, भाव का, तो 'थाम्बु नका।' रुको ना, रुको ना। 'चरैवेति, चरैवेति।'

तो, हमारी समग्र साधना का मर्म क्या है? हम क्या चाहते हैं? तो बाप, इस बार की कथा में हम मर्म की खोज करेंगे। साधना का मर्म, चार बिंदु को आपके सामने रखे। उसके ये आयाम हो सकते हैं। 'मानस' में जहां 'मरम' शब्द आया वहां एक नई बात मिलती है। इसके साथ प्रसंग भी जुड़े हैं, यद्यपि प्रसंग का विस्तार नहीं करुंगा। सब 'रामचरित मानस' में है। एक नया तरीका अपनाया जा रहा है। नव दिन हम मर्म की-रहस्य की बातें करेंगे। शायद कुछ एक नया आनंद मिल जाय।

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।
हम सन सत्य मरमु किन कहहू।।

निज निज रुख रामहि सबु देखा।
कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा।।

एक तो पार्वतीजी के साथ बातचीत हो रही है कि किसकी आराधना कर रही है, क्यों कर रही है और क्या चाहती है? हमारे पास तू सत्य मरम क्यों नहीं बोलती? और दूसरी पंक्ति भगवान राम जनकपुर में जब जाते हैं, रंगभूमि में सब अपने-अपने ढंग से परमात्मा को

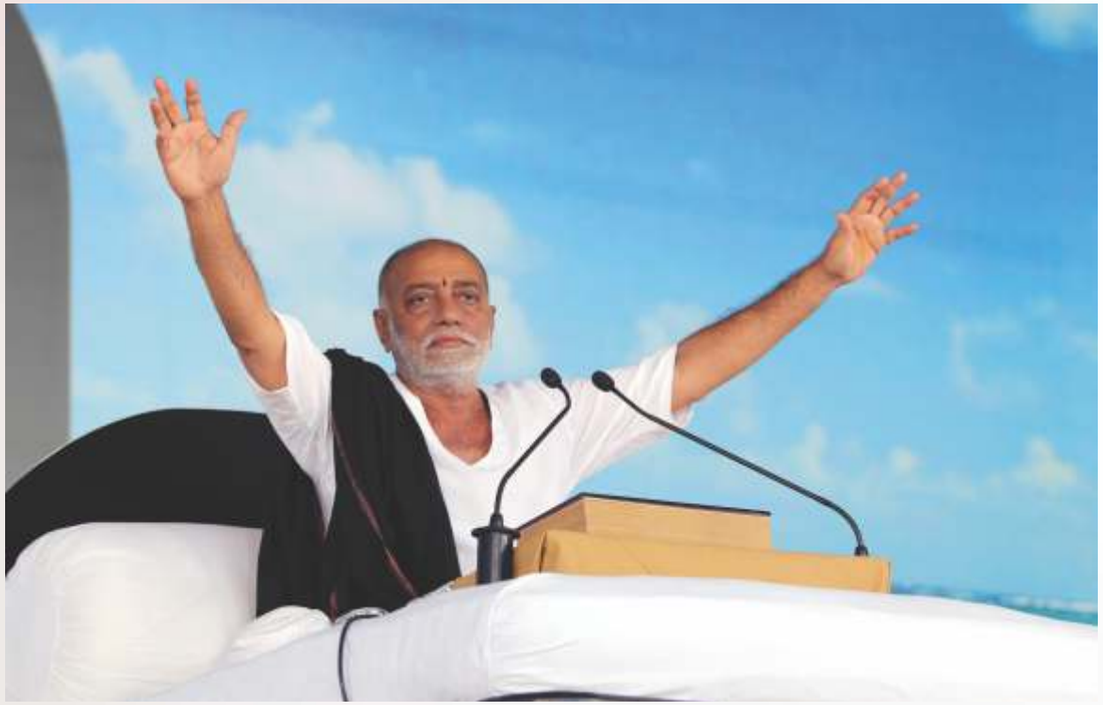

देखते हैं, लेकिन कोई मरम नहीं जान पाया कि राम हमें बिलग-बिलग क्यों दिखते है? तत्त्वत: बात क्या है? मूल में अध्यात्मजगत का रहस्य क्या है, उसके बारे में विशेष हम खोज करेंगे। सबके पीछे कारण एक मात्र है कि हमारा जीवन ज्यादा से ज्यादा प्रसन्न रहे, प्रफुल्लित रहे। कक्का में से आप शब्द लो कि 'क', तो करम का मरम क्या ये पहला प्रश्न उठेगा। करम मानी क्या? धरम का रहस्य क्या है? धरम मानी क्या? तुलसीदासजी ने बहुत अच्छा जवाब दिया है कि -

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।
पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।
पर निंदा सम अघ न गरीसा।।

बुद्धपुरुषों के रहस्य को समझना बहुत बड़ा धर्म है। जाग्रत महानुभाव के रहस्य को पकड़ना। धर्म में नकल न करो। धर्म हमारा स्वतंत्र अधिकार है। सबको अपना निज धर्म जानना।

तो बाप, हरेक वस्तु के पीछे मर्म क्या है? 'रामचरित मानस' ने विपुल मात्रा में उसकी चर्चा की है, इसलिए विलग-बिलग रूप से हम और आप उसकी चर्चा करेंगे। हम ये अद्‌भुत जीवन के मर्म को जान ले तो मेरे भाई-बहन, हम आगे की यात्रा बड़ी निर्भारता से कर सकते हैं। रोज नया आनंद हम प्राप्त कर सकते हैं। ये हमारा जनम-जनम का अधिकार है। इसलिए ये सत्संग है।

कथा की प्रवाही परंपरा के मुताबिक हम कथा का माहात्म्य, ग्रंथपरिचय कहे। 'रामचरित मानस' के सात सोपान है। सात सोपान में ये ग्रंथ आबद्ध है। तुलसीदासजी ने 'कांड' शब्द नहीं लिया है। तुलसी प्रथम सोपान, द्वितीय सोपान, तृतीय सोपान, चतुर्थ सोपान, पंचम सोपान, छ सोपान, सप्तम सोपान, एक बाद एक सीडी के स्टेप है। ऊर्ध्वगमन की ये यात्रा है।

पहला सोपान 'बालकांड', वाल्मीकि का शब्द लेकर कहूं। उसके मंगलाचरण में सात मंत्रों का आश्रय किया गया है -

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

तुलसी का यह ग्रंथ एक अध्यात्म-कविता है। और कविता में वर्ण की महिमा होती है, अर्थ की महिमा होती है, रस की महिमा होती है, छंद की महिमा होती है; लय की, ताल की महिमा होती है। 'रामचरित मानस' की जानकी-सीता ये पृथ्वी की कविता है। सीता केवल व्यक्ति नहीं, कविता है। द्रौपदी अग्नि की कविता है, अग्नि से आई है। सरस्वती आकाश की कविता है, शब्द की देवी है। शब्द आकाश के संतान है। राम भी अग्नि से पैदा हुए। अग्नि से जो प्रसाद निकला, प्रसाद बांटा गया और उसके द्वारा राम प्रकट हुए। राम का प्राकट्य अग्नि के माध्यम से होता है। राम का विराम जल में हुआ करता है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त: स्थमीश्वरम्।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र: सर्वत्र वन्द्यते।।

सात मंत्रों में गोस्वामीजी ने 'रामचरित मानस' के प्रथम सोपान 'बालकांड' में मंगलाचरण किया। फिर तुलसी को श्लोक को लोक तक पहुंचना था, इसलिए ग्रामभाषा में तुलसी ऊतर आये।

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।

गणेश, दुर्गा, शिव, सूर्य, भगवान विष्णु पंचदेवों की पूजा, आराधना करने का आदेश हमें जगद्‌गुरु भगवान आदि शंकराचार्य भगवान ने दिया था। तुलसी ने इन पांचों देवों का स्मरण किया। फिर गुरुवंदना, जिसको मेरी व्यासपीठ 'मानस-गुरुगीता' मानती है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

गोस्वामीजी ने पहले प्रकरण में गुरुवंदना की है। गुरु महिमा का गायन किया है। गुरु महिमा अद्‌भुत है, अद्वितीय है। हमारे प्राचीन भजनों में गाया गया है -

गुरु, तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीअे ...

गुरुपदरज से नेत्र को शुद्ध करके गोस्वामी कहते हैं, मैं 'रामचरित मानस' कथन करने जा रहा हूं। कोई एक सूत्र से यदि हमारी दृष्टि शुद्ध हो जाय, तो ये पूरा जगत वंदनीय हो जाय।

गोस्वामीजी सबकी वंदना करने लगे। इसमें साधु की वंदना की, विप्रवृंद की वंदना की; असुरों की, सबकी वंदना की। आखिर में पंक्ति आती है -

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

तुलसीजी पूरे जगत की वंदना करते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं, साधु का चरित्र कपास के फूल की तरह होता है। और कपास के फूल का एक स्वधर्म है कि वस्त्र बनकर दूसरों के छिद्रों को छिपाना है। एक साधुता की चरमसीमा, उसको रूखड कहते हैं। और मैं साधु को जो रूखड कहकर बुला रहा हूं इन दिनों में, ये रूखड का मेरा एक भाष्य यही है कि साधु दर्भ-खड समान नहीं, रू की तरह है कि सबके छिद्रों को ढांकता है, उसको रूखड कहते हैं।

रूखड बावा तुं हळवो हळवो हाल्य जो,
गरवाने माथे रे रूखडियो झळुंबियो.

दूसरों के छिद्रों को छुपाये ये साधुता। इसी तरह सबकी वंदना करते तुलसी हमको लिये चलते हैं रघुकुल की वंदना, माँ कौशल्या की वंदना, सभी रानियों की, दशरथजी की, जनकजी की, तीनों भाईयों की वंदना करते-करते -

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

श्रीहनुमाजी महाराज की वंदना करते हैं। आप योगमार्ग के यात्री है, तो भी हनुमंतआराधना आपके लिए जरूरी है। ज्ञानमार्ग में हनुमानजी की आराधना बहुत फायदाकारक रही। भक्तिमार्ग के तो हनुमानजी आचार्य है। तो, साधना के किसी भी मारग पर हनुमंततत्त्व हमारे जीवन का बहुत बड़ा फायदाकारक तत्त्व है। हनुमानजी प्राणतत्त्व है। पंचप्राणों की रक्षा हनुमानजी करते हैं। 'विनयपत्रिका' की दो-तीन पंक्ति से हम हनुमानजी को प्रणाम करते हैं -

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

बंदौ राम-लखन-बैदेही।
जे तुलसी के परम सनेही।।

फिर गोस्वामीजी रामनाम की वंदना क्रम में करते हैं। आज हनुमंतवंदना करते विश्राम करें।

तुलसी का यह ग्रंथ एक अध्यात्म-कविता है। और कविता में वर्ण की महिमा होती है, अर्थ की महिमा होती है, रस की महिमा होती है, छंद की महिमा होती है; लय की, ताल की महिमा होती है। 'रामचरित मानस' की जानकी-सीता ये पृथ्वी की कविता है। सीता केवल व्यक्ति नहीं, कविता है। द्रौपदी अग्नि की कविता है, अग्नि से आई है। सरस्वती आकाश की कविता है, शब्द की देवी है। शब्द आकाश के संतान है।

मानस-मरम
।। २ ।।

किसी ने पूछा है, ''बापू, 'हनुमानचालीसा' क्या नाम की तरह पूरे दिन पढ़ सकते हैं? जैसे कि नवकार मंत्र नाम की तरह पूरा दिन बोला जाय।'' हां, 'हनुमानचालीसा' निरंतर नाम की तरह बोल सकते हैं। प्रश्न, ''जब सद्गुरु की उपस्थिति न हो, तब आगे के मारग का मरम पाने के लिए सद्गुरु का अनुसंधान कैसे करे? जब स्थूल रूप में कोई बुद्धपुरुष, जिसके चरणों में हमारी श्रद्धा हो, यदि दैहिक रूप में उपस्थित न हो, तो जीवन के आगे के मारग का मर्म जानने के लिए सद्गुरु के साथ किस रूप में हम अनुसंधान करे?''

सीधा-सा जवाब है, जो मेरे स्वभाव के अनुकूल है, गुरुपदरज, बस। केवल और केवल गुरुपदरज का अनुसंधान करे। और बाप, मेरी समझ में रज की महिमा बहुत आत्मसात् तभी होगी कि आपका जो इष्ट हो, वो भी आपको दिखता बंद हो जाय। याद रखना, इष्ट भी आखिरी सीढ़ी पर बाधक है। बुद्ध ने कहा था कि मुझे भी भूल जाओ। ठाकुर रामकृष्ण को कहा गया था कि तुझे बार-बार काली बीच में आती है, तो ले ये खड़ग, काली का शिश काट दे! मंज़िल भी बाधा हो सकती है।

अहल्या साधना की, शबरी आराधना की और त्रिजटा उपासना की मूर्ति है

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।

इसके पीछे जो मर्म है, ये है। जब हमारा कोई इष्ट आराध्यरूप है, तो आप हटाना नहीं, हट जायेगा। उसकी जगह पर केवल केवल अपना सद्गुरु, अपना बुद्धपुरुष ही दिखेगा। फिर आगे की यात्रा हुई तो सद्गुरु भी नहीं दिखेगा उसके केवल चरणारविंद दिखेगा। और फिर चरण भी नहीं देखने में आयेगा। तब आखिर में उनकी चरणरज का अनुसंधान होता है, ऐसा मैं मोरारिबापू वादे के साथ कहता हूं। ये मेरा अनुभव है। ये गति करनी पड़ेगी। रुकना मत। ये बड़ा राजमार्ग है। ये द्रुतगति का मार्ग है, ठहरो मत।

मत्स्यवेध अर्जुन ने किया। बड़ा कठिन है। एक स्तंभ है, वहां तराजु लटकाया है, नीचे जल है। तराजु में थंभ पकड़कर चढ़ना है। दोनों तराजु में समान रूप में पैर रखना है। तराजु आंदोलित होता है। नीचे दृष्टि करना है। उपर मछली घूम रही है और उसकी छाया नीचे पानी में है और उसकी आंख को निशाना बनाना है। और अर्जुन ने ये करके दिखाया। बड़ा कठिन है ये। सद्गुरु पदरज का अनुसंधान बड़ा कठिन है। हमें चाहिए स्थूल, क्योंकि हम इस स्थिति में है। और जरूरी है स्थूल। स्थूल जरूरी है। छोड़ना मत, क्रमशः छूटता है। कई श्रोता आते हैं। कहते हैं, 'बापू, हम क्रिष्नमंत्र जपते हैं, लेकिन बार-बार हनुमानजी आ जाते हैं, क्या करे?' तुम कोशिश मत करो, प्लीज़ आने दो। ये आगे का पड़ाव है, मुकाम है। यद्यपि स्थूल तक रुचि है तो लगे रहो। लेकिन सद्गुरु की अनुपस्थिति में अनुसंधान केवल रज का हो सकता है। छबि रखो, मूर्ति रखो, पादुका रखो, ये सब सहायक है। आखिरी तत्त्व यही है।

एक भाई ने पूछा है, 'हनुमानजी का जन्म कहां हुआ?' तलगाजरडा में! निजता तलगाजरडा की मिट्टी की है। ये (व्यासपीठ के पीछेवाला) हनुमान का जनम तलगाजरडा में हुआ है। हनुमान सबका है। वायु सबका है। पवन सबका है। बाप, जो पंक्ति हमें ली है, इस कथा के लिए। तो, 'मानस' में 'मरम' शब्द दस बार आया है, 'मरमु' छब्बीस बार आया है और 'मर्म' एक बार आया है, ऐसा हरीशभाई पंड्या ने लिखा है। 'अरण्यकांड' का दोहा जहां 'मर्म' शुद्ध शब्द एक बार आया। 'मर्मी' शब्द दो बार आया हैं।

'शस्त्री मर्मी ...', जो नव का विरोध न किया जाय ऐसा मारीच का वक्तव्य है 'मानस' में; उसमें शस्त्री, मर्मी, सठ, धनी, वैद, बंदीजन आदि-आदि, वहां एक बार 'मर्मी' शब्द है। और एक बार 'मर्मी' शब्द 'उत्तरकांड' में मिला है -

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ग्यान बिराग ये नयन उरगारी।

सच्चे आदमी को मर्मी कहा है। तो बाप, सबसे पहले 'मरम' शब्द का उपयोग 'मानस' में हुआ है -

संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची।

उसके बाद फिर 'मरमु' शब्द का प्रयोग होता है -

सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सराहिं।

शिव ने त्याग दिया सती को उसके बाद जो सती अधिक चिंतित मन में रहती है। सत्तासी हजार साल जीना पड़ा, तो ये मर्म कोई न जाना। एक-एक युग समान दिन बीतता था। उसके बाद फिर 'मरम' शब्द की आवृत्ति इस पंक्ति में आती है, जिस पंक्ति का हमने इस कथा में आधार लिया है -

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।
हम सन सत्य मरमु किन कहहू।।

तो, बड़ा प्यारा शब्द है आध्यात्मिक क्षेत्र में, उसकी हम चर्चा कर रहे हैं। 'मर्म' का एक अर्थ होता है हेतु। उसका हेतु क्या था, उसको ही मर्म कहते हैं। जब कोई बोलता है तो दूसरा सुनकर कहेगा कि भई, उसके पीछे उसका कारण क्या था ऐसा बोलने का, ये भी हम व्यवहार में यूझ करते हैं। कल मैंने कहा, एक अर्थ होता है मर्म का रहस्य कि क्या रहस्य है इसके पीछे? एक अर्थ होता है मर्म का भेद, छिपाना; और हर एक घटना के पीछे बाप, उसका कोई न कोई नगद मर्म होता है। हम नहीं जानते। हम वस्तु का उपयोग करते हैं, उसका मर्म जानने की कभी-कभी जरूरत भी नहीं है। लेकिन मर्म तो होता है। हम सब पानी पीते हैं, प्यास लगती है। लेकिन पानी का H_2O मर्म ये हम नहीं जानते। H_2O पानी का वैज्ञानिक मर्म है।

ईश्वर के मर्म की खोज में कोई सफल नहीं हुआ। फिर भी करो तो अच्छी बात है, समय जाएगा। लेकिन मैं एक बात करूं कि एक-दूसरे के मरम जानने का प्रयास मत करना, इससे तुम्हारा भजन खंडित होगा। हर एक का मर्म होता ही है। लोग कहेंगे आदमी दस साल में इतना कमा गया इससे पीछे मर्म होगा। सनातन गोस्वामी महाराज जो चैतन्य महाप्रभु के पट्टशिष्यों में से एक, उसको एक बार पूछा था, 'आपकी इस लंबी भगवद्यात्रा का मर्म क्या है, इसका हेतु क्या है?' और आप जानते होंगे कि मूल मुस्लिम थे। बंगाल के हुसैन शाह सम्राट के वो दीवान थे, साकर मल्लिक। कब किसको कैसे मारग मिल जाता है! चैतन्य गौरांग प्रभु का संग हुआ और साहब, दीवानपद छोड़ा और चैतन्य का दीवानपद ले लिया! और दीक्षित हो गये भगवान गौरांग से। साहब, रोग का चेप लगता है, तो जिसका परमात्मा से योग हो गया उसका चेप न लगे? भजनानंदी का चेप न लगे तो समझना भजन में कोई कमी है।

मुझे एक बार 'मानस-माधव' पर बोलना है। मेरे पास जूनागढ के एक शायर, जो गुजराती है, मिलिंद गढवी, उर्दू में भी बहुत कुशलता है, उनकी गज़ल है -

इसी बहाने लकीरों को भी बदल आउं।
ये सोचता हूं कि जन्नत तलक टहल आउं।

एक बात भरोसे के साथ कहता हूं, हरिनाम आदमी का प्रारब्ध बदल देता है। यस, भजनानंदी के पास रहने से भी, उपासक जिसको कहते हैं उसके पास रहने से भी प्रारब्ध धीरे-धीरे बदलता है। प्रारब्ध बदलना है तो बुद्धपुरुषों का संग करो। जप-तप से नहीं बदलेगा। ये सब आश्वासन है। वींटियां पहनने से नहीं बदलेगा! तसल्ली मिलेगी। जरूर पहनो, राहत मिलेगी। राहत कम वस्तु नहीं है। लेकिन प्रारब्ध की नितांत बदलाहट होती है भजन करने से या भजनानंदी के पास बिना शिकायत, बिना तर्क बैठने से; वोच करने से नहीं! मैं रिक्वेस्ट करूं मेरे श्रोताओं को किसी भजनानंदी के पास रहो, अगल-बगल में जानने की कोशिश छोड़ दो। तुम जानने की कोशिश करते हो कि ईबादत क्या है, बंदगी क्या है! तुम अभी स्थिर नहीं हो, छोड़ो! अनुसंधान करो। दूसरा शे'र है -

मैं रोशनी हूं मुझे कैद कर नहीं सकते।
जरा दरार भी दिख जाये तो निकल आउं।

भजन प्रकट होगा, भजन छिपाया न रहे। दाबीदुबी ना रहे कस्तूरी की सुगंध। ये आखिरी औषधि है। असाध्य रोगों की औषधि है हरिनाम। हरिनाम को दिलो-दिमाग में गुंजने दो। प्रारब्ध बदलेंगे। ये प्रारब्ध का उपकार है कि हमें हरिनाम की ओर प्रेरित करते हैं। तो, संतों की मंडली ने सनातन गोस्वामी को पुछा कि ये उपलब्धि का रहस्या क्या है? तब सनातन गोस्वामीजी ने कहा, 'सभी साधनों का एकमात्र मर्म है हरिनाम, परमात्मा का नाम।' हरिनाम से सबकुछ होता है। और 'मानस' तो वहां तक कहता है, हरि न कर पाये, वो हरिनाम कर पाये।

हमारी साधना बिलग प्रदेश है। हमारा लक्ष्य कुछ ओर है! हम संसारी है, लक्ष्य भिन्न हो जाय तो आलोचना मत करना। साधना चालु रखना। धीरे-धीरे हेतु क्षीण हो जायेंगे। लेकिन हमारे अनुष्ठान के पीछे लक्ष्य ओर है! पार्वती को सप्तऋषि पूछते हैं -

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।
हम सन सत्य मरमु किन कहहू।।

'तू किसकी आराधना करती है, तू क्या चाहती है?' सप्तऋषि को शिव ने कहा कि, आप पार्वती के पास जाकर प्रेम की परीक्षा करो। ऋषि गौरी को मूर्तिमंत तपस्या के रूप में देखते हैं और फिर ये प्रश्न पूछते हैं। आराधना किसकी करती है और आराधना के बाद तेरा लक्ष्य क्या है? तू क्या चाहती है, हमें सत्य बता दो। पूरे प्रसंग का मर्म इतना छोटा है, पार्वती साधना शिव की करती है और चाहती शिव को ही है। हम साधना दूसरी करते हैं, चाहते हैं कुछ ओर! ये मर्म है। प्रमाण 'मानस' की पंक्तियां -

उर धरि उमा प्राण पति चरना।

किसकी आराधना? राम की मूर्ति स्थापित करके बैठ गई? क्रिष्न की मूर्ति स्थापित की? ब्रह्मा को बिठाया? शिव को पाना है और शिव की उपासना करके शिव को ही पाना है। हमें रामभजन करके राम को ही पाना है, धन-दौलत नहीं; प्रतिष्ठा-पद नहीं। ये तो प्रारब्ध से मिलेगा, पुरुषार्थ से मिलेगा, नेटवर्क बना लो, मिलेगा! लेकिन राम नहीं मिलेगा। हमारा साधन कुछ है, लक्ष्य कुछ ओर है!

साधना, आराधना, उपासना ये तीनों के अर्थ 'मानस' के आधार पर बिलग-बिलग है। 'मानस' में उपासना त्रिजटा ने की है। ये जानकी के पास बैठी रहती है। उपासना की मूर्ति 'मानस' की त्रिजटा है। आराधना शबरी ने की है, वो पुकारती है, गाती है। दुनिया का सबसे पहला वैद शबरी है 'रामायण' के आधार पर। मुझे

भावनगर के एक डाक्टर ने कहा कि बापू, हम शबरी से प्रेरणा लेते हैं। उसने कहा कि शबरी ने बैर खुद चखे फिर राम को दिया। वैदों को चाहिये औषधि का प्रयोग पहले खुद अपने पर करे, फिर मरीज़ पर करे। ये शबरी ने हम को सिखाया।

साधना माँ अहल्या की। वो साधना का प्रतीक है। बैठ गई बस, शीलावत्। साधना अहल्या, आराधना शबरी और उपासना त्रिजटा। निकट बैठना, बस। तो, पार्वती ने आराधना भी शिव की की और लक्ष भी शिव। शिव के द्वारा शिव को पाना। भजन के माध्यम से भजन को बढ़ाना। पार्वती कहती है, मैं शिव की आराधना करती हूं और शंभु चाहती हूं। साधना और साध्य एक हो ये पहला मर्म 'रामचरित मानस' बता रहा है। दूसरी पंक्ति उठाई है, ये सीता के स्वयंवरवाले प्रसंग की पंक्ति -

निज निज रुख रामहि सबु देखा।
कोऊ न जान कछु मरमु बिसेषा।।

भगवान राम जब जनकपुर में सीयस्वयंवर में प्रवेश करते हैं और उस समय राम को देखनेवाले अनेक है। सभी निगाहें अपने-अपने ढंग से देखती रही। यहां है, 'निज निज रुख।' निज निज रुख का एक अर्थ होता है, अपनी-अपनी इच्छा, अपनी-अपनी मरजी के मुताबिक सबने राम को देखा। सीधे भाष्य में यहां कोई मर्मवाली बात नहीं है। लेकिन गुरुमुखी अर्थ इसका है कि भगवान इतने रूप में दिखाई दिये, लेकिन जो देखता था उसको लगा कि राम का रुख हमारे उपर है। राम को जिस रुख में देखा जाता था, सबके प्रति राम की दृष्टि थी। ये विशेष मरमु था, ये विशेष घटना थी। एक व्यक्ति सबको देखे, लेकिन सब ये महसूस करे कि हमें ही देख रहे हैं। राम के चरित्र में ये स्वाभाविक है। जब लंकाविजय के बाद आते हैं तब गोस्वामीजी स्पष्ट करते हैं -

अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।

मेरे पास आज अनिल चावडा की गज़ल है। युवान कवि है। बड़ा अच्छा लिखता है -

संप माटीअे कर्यो तो इंट थइ गई।
इंटनुं टोळुं मळ्युं तो भींत थइ गई।
हुं कळी माफक जरा उघडी गयो,
एटलामां पण तने तकलीफ थई!

बाप, रामकथा सुनते-सुनते किसी पर ऐसी वोच मत करना! सहज जीने देना। जिस पर हमारी श्रद्धा होती है, तो लगता है कि कोई है। किसी का रुख हमारा सुख है। मैं तो उस पर पक्का हूं साहब, मुझे तो यही लगता है कि ये सुख किसीके रुख की बदौलत है। चाहिए त्रिगुणातीत श्रद्धा, चाहिए प्रतिष्ठामुक्त निष्ठा। गुरु, बुद्धपुरुष पता न लगे इस तरह हमारा खयाल करते हैं।

तो, सबको लगा कि राम का रुख हमारी ओर है। इसका मरम कोई नहीं जानता। ये बुद्धपुरुषों का रहस्य हम कहां पा सकते? तो बाप, ये कुछ विशेष मरम है कि कौन हमें चारों ओर से देख रहा है? देखनेवाले तो अपनी रुचि से देखता है। लेकिन केवल और केवल करुणा और कृपा की दृष्टि से हमें कौन ताक रहा है? और एक वस्तु याद रखना कि हमारी कोई भी ताकत के पीछे किसी का ताकना हमें बल दे रहा है।

तो बाप, 'मानस-मरम' के बारे में मूल रूप में हमारी चर्चा चल रही है और इस चर्चा करते-करते इनकी कृपा से कभी हमें ये मर्म का पता लग जाय कि हम यहां क्यों है? जीव का मर्म क्या है? हमारे जीवन का हेतु क्या है? ये हरा-भरा जगत जो हमारे सामने है उसका मर्म क्या है? क्यों प्रपंच? और ये सब किसी ने रचा है, तो

रचयिता का मरम क्या है? यद्यपि रचयिता का मरम तो हम नहीं पा सकते। हां, उपाय तो मैंने कल 'मानस' के आधार पर रखा कि -

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।

लेकिन ये तीन जो जीव, जीवन और जगत इसका मरम क्या है? इसका जवाब मेरे पास हाज़िर है। लेकिन ये जवाब है केवल। बोल देने से कुछ पता नहीं लगता। हमें ये अनुभव हो। ये हमारे जीवन का सत्य बने।

मुझे एकदम जवाब दे देना हो तो मैं ये दे सकता हूं। मेरे बिलकुल निचोड़ के ये जो तीन सूत्र है, जो मैं दुनिया के सामने रखता रहा हूं; हर कथा में, हर मोड़ पर मैं ये कहता ही जा रहा हूं वो है, जीव का मर्म क्या है, तो मैं कहूंगा कि, जीव का मर्म सत्य है। क्यों? मैं कैसे कहूं? क्या अधिकार? कौन बल है? किसका रुख काम कर रहा है इसके पीछे? तो, तुलसी ने लिखा है -

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

तुलसी कहते हैं, जीव अविनाशी है। और सत्य अविनाशी है। ये मत सोचो कि जीव बेकार है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:।
मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

ऐसा भगवान श्रीकृष्ण का भी निवेदन है। तो, ये जीव सत्य है। जरूर, उसमें लुब्ध न हो जाये, आसक्त न हो जाये। इसीलिए ऋषिमुनिओं ने हमें अपने-अपने ढंग से सावधान किया है। लेकिन सावधान करनेवाले महापुरुष भी जानते थे कि जीव भी सत्य है, क्योंकि अविनाशी है। इसी बल पर मैं कहूंगा, जीव सत्य है।

विनोबाजी, इस युग के महामुनि जिसको मैं कहता हूं, उसने कहा, ब्रह्म सत्य है ही, लेकिन जीव मिथ्या नहीं है। भगवान शंकर के साथ उसका विरोध नहीं है, लेकिन विनोबा का अपना दर्शन है। इसीलिए वो कहते हैं कि, 'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्ति।' जिसको मेरे गोस्वामीजी 'विनयपत्रिका' में 'चिद्विलास' कहते हैं। देखते-देखते आदमी उसका अभ्यास करके पा सकता है कि ये चिद् तत्त्व का कोई विलास है। ये स्फूर्ति है।

जीवन का मर्म मेरी समझ में प्रेम है। प्रेम नहीं तो जीवन का कोई मर्म नहीं। प्रेम नहीं तो कोई अर्थ नहीं। और ये न समझे कि ये जगत ये सब बेकार है। दुनिया बनाकर प्रभु ने करुणा की है। इस दुनिया का बहुत बड़ा मर्म है करुणा। आपणे त्यां गुजरातीमां एक पद आवे छे -

ओ करुणाना करनारा,
तारी करुणानो कोई पार नथी।

जिसको हम जगत कहते हैं वहां नदियां बहती है, क्या है ये? ये उनकी करुणा है। सूरज रोज निकलता है। क्यों? करुणा के कारण। परोपकार कोई भी करेगा उसके पीछे करुणा होगी तो ही परोपकार कर सकेगा। ठीक है, थोड़ी प्रतिष्ठा की लालच हो, बात ओर है। लेकिन कुछ मात्रा में करुणा होगी, तो ही आदमी परोपकार करेगा। परोपकारमति होगी तो ही आदमी परोपकार करेगा। परोपकारमति के पीछे कुछ न कुछ करुणा का तत्त्व निहित रहता है।

तो, ये मरमों के बारे में चल रहा संवाद मेरा और आपका। उससे शायद कुछ हो न हो तो भी अभी तो आनंद ले रहे हैं। विशेष चर्चा कुछ कल। आज थोड़ा कथा का दौर। कल हम चर्चा कर रहे थे हनुमंतवंदना की। और उसके बाद हरिनाम की महिमा की चर्चा है। तुलसीदासजी ने प्रभु के नाम की महिमा का गायन किया। भगवान शिव इस छोटे से नाम को महामंत्र की मानसिकता से निरंतर जपते हैं। गणपति ने हरिनाम के प्रताप से विश्व में प्रथम पूज्यपद प्राप्त किया। आदि कवि वाल्मीकि ऊलटा जपते-जपते शुद्ध हो गये। कलियुग में सरल, सहज, सार्वभौम साधन का नाम है, प्रभु के नाम का गायन। आखिर में करीब-करीब सबका सार तो यही निकलता है, प्रभु का नाम। और मैं हरवक्त स्पष्टता करता रहता हूं और करता रहूंगा कि मेरा कोई आग्रह नहीं। रामनाम जपो, क्रिष्ननाम जपो, शिवनाम जपो, अल्लाह, जिसस, कुछ भी नाम लो।

तो, नाम की विशेष महिमा कलियुग में है। ये प्रतिपादित होता है। सभी सिद्धों का भी यही अनुभव है। तो, पहले से क्यों न लें? दूसरी साधना में रुचि हो तो जरूर करो, कोई वो नहीं। मेरा तो आखिरी निर्णय ये है, प्रभु का नाम। बस। उसके बाद 'मानस' का सर्जन कैसे हुआ उसकी कथा आई।

अनादि कवि तो शिव है। हृदयस्थ शास्त्र था उसको तुलसी ने ग्रंथस्थ किया। ज्ञानघाट बताया, जहां शिव पार्वती को कथा कहे। उपासनाघाट बताया, जहां बाबा भुशुंडि गरुड को कथा सुनाते हैं। याज्ञवल्क्य महाराज, जो कर्म के घाट के प्रवक्ता है, जो भरद्वाजजी को सुनाते हैं। और तुलसी शरणागति के घाट के प्रवक्ता है और उन्होंने अपने मन को सुनाया। तो, सरोवर के साथ रामकथा की तुलना की। चार घाट पर चार परम आचार्यों का स्थान बताया। उसमें तुलसीदासजी दीनता के घाट पर बैठकर कथा का आरंभ करते हैं। और हमें लिये चलते हैं कर्म के घाट पर।

एक बार महाकुंभ हुआ। सब महात्मा आये। हरेक विषय की जगकल्याण के हेतु वहां चर्चायें होती थी। एक बार के कुंभ के कल्पवास करके परम विवेकी याज्ञवल्क्य महाराज जब बिदा लेने लगे, तो भरद्वाजजी ने चरण पकड़े, 'मेरी एक जिज्ञासा मैं आपके सामने रखुं। भगवन्, मुझे बताईये राम तत्त्व क्या है? एक राम का नाम शंकर निरंतर जपते हैं अविनाशी होते हुए भी। और एक राम दशरथ के पुत्र। आप सब कुछ जानते हैं इसलिए हृदय से सोचकर के मुझे बताईये कि रामतत्त्व क्या है?' और फिर कथा का आरंभ शिवचरित्र से याज्ञवलक्य महाराज भरद्वाजजी के पास करते हैं।

> एक बात भरोसे के साथ कहता हूं, हरिनाम आदमी का प्रारब्ध बदल देता है। यस, भजनानंदी के पास रहने से भी, उपासक जिसको कहते हैं उसके पास रहने से भी प्रारब्ध धीरे-धीरे बदलता है। प्रारब्ध बदलना है तो बुद्धपुरुषों का संग करो। जप-तप से नहीं बदलेगा। ये सब आश्वासन है। अंगुठियां पहनने से नहीं बदलेगा! तसल्ली मिलेगी। जरूर पहनो, राहत मिलेगी। लेकिन प्रारब्ध की नितांत बदलाहट होती है भजन करने से या भजनानंदी के पास बिना शिकायत, बिना तर्क बैठने से; वोच करने से नहीं!

मानस-मरम
॥ ३ ॥

‘मानस-मरम’, जिसकी जीवनोपयोगी तथा आध्यात्मिक चर्चा बातचीत के रूप में हो रही है। आज थोड़ा प्रशांत और प्रसन्न चित्त से कर्म के मर्म के बारे में हम सोचें। मैं तो ऐसे ही प्रवाह में बोल गया, बाद में मुझे ‘विनयपत्रिका’ में मिला कि गोस्वामीजी ने परम का मर्म, धरम का मर्म, कर्म का मर्म ये चार-पांच शब्द उठाये हैं। कर्म क्या है? कर्म का मतलब क्या है?

आपणे आपणा धर्म संभाळवा,
कर्मनो मर्म लेवो विचारी.

नरसिंह महेता ने ये भी सूत्रपात किया कि कर्म का मर्म जान लेना चाहिए। जैसे धर्म का रहस्य जानना कठिन बताया गया। कभी हमारे यहां ऐसा कहा गया कि धर्म का एक अर्थ कर्म होता है। करम और धरम, समान

सत्संग से कर्म का मर्म समझ में आ सकता है

रूप में उपयोग किया गया है। यद्यपि कर्म भौतिक क्षेत्र को कवर करता है और धर्म आध्यात्मिक क्षेत्र को कवर करता है। ‘महाभारत’ में भी संकेत मिलता है कि युधिष्ठिर भगवान वासुदेव को पूछता है कि वैष्णव धर्म क्या है? कितने श्लोकों का लिस्ट दिया है! सनातन धर्म में भी संन्यासी का धर्म, ब्रह्मचारी का धर्म, गृहस्थ का धर्म, वैरागी का धर्म, राजा का धर्म, प्रजा का धर्म, पड़ौशी का धर्म, सब बिलग है। वैष्णव धर्म के बारे में पूछा गया तब भगवान क्रिष्न बहुत सुंदर जवाब देते हैं कि युधिष्ठिर, ‘धर्मः श्रुतो वा दृष्टो वा कथितो वा कृतोऽपि वा अनुमोदितो वा।’ पांच लक्षण। कर्म के ट्रेक पर जाने से पहले ये समझ ले।

बाप, वैष्णवधर्म की चर्चा करते हुए भगवान क्रिष्न ने कहा, धर्मराज, पांच वस्तु धर्म के साथ जुड़ी है। एक, श्रुतो वा; धर्म को सुनना। कोई धर्मज्ञ हो, धर्मसार को जाननेवाला कोई बुद्धपुरुष हो, तो इससे धर्म को सुनना। उपनिषदों ने इसलिए श्रवण को प्रथम रखा है। वेदांत में और भक्ति मारग ने भी ‘श्रवणं’ कहकर पहले रखा। धर्म सुनना, अधर्म की न सुनना। अधर्म मानी किसी की निंदा, पापप्रयत्न ये सब अधर्म की व्याख्या है, ये न सुने। मानो धर्म न सुन सके, तो धर्म को देखो। जो धर्मपुरुष है, जिसमें नखशिख प्रेम-सत्य-करुणा भरी है। आंख में करुणा है, हृदय में प्रेम है, जुबां में सत्य है, ऐसा कोई चलता-फिरता धर्म, उसको देखो। सुनने का धर्मलाभ न मिला तो उसको देखो, जो साक्षात् धर्ममूर्ति है। तीसरी बात बताई ‘महाभारत’कार ने ‘कथितो वा।’ सद्गुरु से नहीं, कहीं से भी नीति की, प्रामाणिकता की, अच्छी बातें हो, कहलाई गई हो, कहलाती हो ये धर्म है। कोई महापुरुष बोलता कुछ नहीं, केवल करके दिखाता हो, धर्म उसकी कृति में है, जीवनी में है। गांधीबापू कहते थे, ‘मारुं जीवन ए ज मारो संदेश।’ जिसकी करणी में धर्म हो। चलो, हम सुन न पाये, हम देख न पाये, हम कथित धर्म को भी नहीं सुन पा रहे और किसी में हमें धर्म का वर्तन न दिखता हो, तो फिर ‘अनुमोदितो वा।’ हमारे समाज में से कोई व्यक्ति धर्म का अनुमोदन करता हो, उसका संग करो। धर्म का पक्ष लेता हो। धर्म में हमारी सहमती। ये बोल रहा है, उसको अनुमति। ऐसे आदमी को इन्द्रपद से कई गुना पद की प्राप्ति होती है, ऐसा ‘महाभारत’ कहता है।

तो, मेरे भाई-बहन, कर्म के मर्मों को, धर्म के मर्मों को समझने की बात जब आती है, तब हम क्यों कर्म करते हैं? कर्म का मर्म क्या? जब फल हमारे हाथ में नहीं, तो उसका राज़ क्या है? इसका संकेत ‘मानस’ में आता है। कर्म तीन प्रकार से होते हैं। कर्म केवल शरीर से ही होता है, इस भ्रांति से बाहर आईए। यद्यपि कर्म का मुख्य क्षेत्र शरीर है। चलना, फिरना, खाना, पीना ये सब हम करते हैं, ये सब शारीरिक कर्म है। लेकिन कर्म का प्रदेश इतना छोटा नहीं है। कर्म का प्रदेश त्रिभुवनी प्रदेश है। कर्म मन से भी होता है। कभी-कभी रात को निंद नहीं आती है, शरीर कोई कर्म नहीं करता, लेकिन मन कर्म कर रहा है। मानसिक कर्म चलता है। मानसिक कर्म सुबह हवाला देता है शरीर को कि शुरू कर, इसको दस बजे मिलने का समय है। मन ने सोचा, शरीर ने शुरू कर दिया। फिर वाणी से कर्म शुरू होता है।

कर्म के तीन क्षेत्र है - मानसिक, कायिक और वाचिक। तीनों प्रकार के कर्म का मर्म क्या है? मानसिक कर्म का मर्म जान भी पाये, दूसरा न जान पाय। हम क्या सोचते हैं, किस लिए सोचते हैं, क्या इरादा है इसके पीछे ये हेतु है, हम तो जान लेते हैं। शरीर काम पर लग गया, मर्म हम जान लेते हैं कि मन ने जो सोचा था वो पूरा करने शरीर चल रहा है। लेकिन उसके बाद वाणी से कर्म शुरू होता है। ‘गीता’ ने ठीक कह दिया कि कर्म के बिना कोई एक क्षण नहीं रह सकता।

मेरे पास एक प्रश्न है, ‘‘बापू, आपने कभी कहा था कि ‘भगवद्गीता’ में कहा है, ‘निमित्त मात्रम् भव सव्यसाचिन्।’ निमित्त बनकर कर्म करो, तो इस कर्म का रहस्य क्या है?’’ फिर ‘महाभारत’ में जाना पड़ेगा। युद्ध की नोबत आ चूकी है, यद्यपि क्रिष्न ने शांति के सभी प्रयास प्रामाणिकता से कर लिये हैं। भगवान क्रिष्न असल में न युद्धवादी है, न विजयवादी है, न पराजयवादी है। तीनों नहीं। और दुर्योधन भी विजयवादी नहीं है।

उसको पता है कि विजय मेरी नहीं होगी, लेकिन ये आदमी युद्धवादी है। लडुंगा, लड़के रहुंगा। सब पात्र जानते हैं कि विजय तो उनकी ही है, जहां माधव है।

'महाभारत' में अन्याश्रय और क्रिष्नाश्रय ये दो ग्रूप है। कभी मूल 'महाभारत' हाथ में आये तो अपने ढंग से पढ़िएगा, फिर सुनना। शास्त्र तो सबके पास होता है, सद्गुरु के पास जाय तब हमारे नापका कुर्ता बनता है। तो, मैं आपसे निवेदन कर रहा था अन्याश्रय और कृष्णाश्रय क्या है? 'महाभारत' में जायें तो दुर्योधन अन्याश्रय है और अर्जुन कृष्णाश्रय है। दुर्योधन को निरंतर अन्याश्रय है। कर्ण पर आश्रय, भीष्म कुछ करेगा, द्रोण कुछ करेगा! इसलिए ये आदमी प्रश्न पूछता है, भीष्म को, द्रोण को! सबको पूछता है, 'हम कितने दिन में युद्ध जीतेंगे?'

ऐसा ही प्रश्न पांडवपक्ष में आया। युधिष्ठिर पूछता है अर्जुन को कि, 'अर्जुन, तुम्हें एक को लड़ना है तो 'महाभारत' का युद्ध कितने समय में लड़ोगे?' बोले, 'निमिषमात्र, क्योंकि माधव मेरे साथ है।' और साहब, निमिषमात्र जीत सकता है कौन? जो निमित्तमात्र होता है। कर्म का मर्म यही है। हम कोई भी वस्तु निमिषमात्र में कर सकते हैं यदि हमारा सभी कर्तृत्व को छोड़कर निमित्तमात्र करें। तो, कर्म का जाल बड़ा मुश्किल से समझ में आता है। मुझे क्रिष्न की एक वाणी बहुत प्यारी लगती है। सहज कर्म से सभी पाबंदियां छूट जाती है। 'सहज कर्म कौन्तेय।' भूख लगे तब खाओ। उठना है, उठ जाओ। ये झेन परंपरा के शब्द है। निंद आये, सो जाओ।

तो, कर्म का जो मर्म है मानसिक, कायिक और वाचिक। मन सोचता है वो भी कर्म; काया काम करती है वो तो कर्म ही है और उसके बाद वचन बोलने लगते हैं वो भी कर्मक्षेत्र है। श्रवण करना भी कर्म है।

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।

सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार।।

ये वाचिक कर्म का क्षेत्र है। याज्ञवल्क्यजी प्रयाग में आये, भरद्वाजजी ने उसको रोका, पूजा की, सब कायिक कर्म है। और रामतत्त्व क्या है, वो बात पूछी और वक्ता ने वाचिक कर्म का आरंभ किया तो सब्जेक्ट बदल दिया।

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही।

कहिअ बुझाई कृपानिधि मोही।

प्रभु सोई राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।

सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु विचारि।।

पूछा था रामचरित और कहते हैं, मैं पहले शिवचरित्र आपको सुनाउंगा, क्योंकि आपका मर्म मुझे जानना था। बुद्धपुरुष वाणी से विषय बदलते हैं। जान बुझकर संदर्भ बदलते हैं कि श्रोता का पूछने का मर्म क्या है? केवल पूछने के लिए नहीं पूछ रहा है? ये ईरादा पकड़ना है।

तो कर्म का मर्म है एक ही प्रकार का चिंतन मन का चले, उसकी दिशा बदले। तो, कर्म का मर्म पाया जाता है। कितनी जगह पर हमारा मन भटकता है, खबर नहीं! और अंदर बैठा हुआ परम कुछ कहता नहीं! क्रिष्न हृदय में बैठा सबको भटकाता है, अटकाता नहीं। ये नडियाद के समर्थ महापुरुष नवनीतजी शास्त्री महाराज के शब्द है।

सत्संग हमें और आपको कभी न कभी ये सीखा देता है कि किस तरह चिंतन की दिशा बदले तो मानसिक कर्म का मर्म समझ में आये। विचारों की दिशा बदलने का एक सात्त्विक प्रयोग है भगवत्कथा। वक्ता को भी मन की दशा बदलनी पड़ती है। मानसिक कर्म का मर्म यही है। शारीरिक कर्म का यही मर्म है कि हम करने योग्य करे, खाने योग्य खाये, पीने योग्य पीए। और वो भी सहज किया जाय। वाचिक कर्म का मर्म है विनय से बोला जाय, सम्यक् बोला जाय, सत्य बोला जाय, प्रिय बोला जाय। ये सब वाचिक कर्म के मर्म है।

रात रहे ज्याहरे पाछली खटघडी साधुपुरुषे सुई न रहेवुं।

निंद्राने परहरी समरवा श्रीहरि 'एक तुं, एक तुं' एम कहेवुं।

सत्संग यदि हमें चेनल बदलना सीखा दे तो ये तीनों के कर्मों का मर्म समझ में आ सकता है। भरद्वाजजी के मर्म को जानने के लिए याज्ञवल्क्य ने वाचिक कर्म के द्वारा पुछा कुछ, कहा कुछ! फिर आखिर में मर्म खोलते हैं, मैंने पहले आपको शिवचरित्र सुनाया, क्योंकि मुझे आपका मर्म जानना था। उसके बाद तुलसी एक बार 'मर्म' शब्द का प्रयोग करते हैं -

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।

जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह।।

सतीवृंदा का प्रसंग। भगवान विष्णु ने छल करके वृंदा के सतीत्व को तोड़ा, देवताओं का कार्य करने के लिए। तुम्हारे कारण तुम छल करो तो पाप है, लेकिन जगमंगल के कारण कभी कुछ करना पड़े तो ये पाप नहीं है। ये पुण्य नहीं है, लेकिन पाप भी नहीं है। समग्र विश्वकल्याण के लिए भगवान ने छल किया। लेकिन सती अपने सतीत्व के कारण विष्णु का मर्म जान गई, ये जलंधर नहीं है, ये विश्वंभर है। यहां विष्णु के सत्य से ज्यादा सत्य की मात्रा वृंदा की है, इसलिए मर्म पकड़ लिया। तो यहां भी मर्म की बात आई है। आगे एक प्रसंग मर्म का।

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।

गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रियकंता।।

वहां फिर रहस्य की बात आती है। 'हे हरि, आप पृथ्वी और देवताओं के पालक है। आपकी करणी अद्भुत है, अलौकिक है। आपके अलौकिक कर्म का मर्म कोई नहीं जाने। लेकिन आप जिसको जनाना चाहे वो ही आपके मर्म को जान सके।' इसलिए देवता लोक कहते हैं, 'हे हरि, आप सहज कृपालु, दीनदयाल हो, तो हम पर अनुग्रह करो ताकि हम मर्म जान सके, समझ पाये।' काग बापू का एक पद है -

कळा अपरंपार, वहाला! एमां पहोंचे नहीं विचार,

एवी तारी कळा अपरंपारजी.

कीडीनां आंतर केम घडियां, सृष्टिना सरजणहार?

एवी तारी कळा अपरंपार ...

परम तत्त्व जिसके साथ होगा उसके पहलु में दुनियाभर के खजाने होते हैं। उनके साये में जो भी बैठा है, बैठे-बैठे सबकी किस्मत बदल रहा होगा। बाप, तेरी अद्भुत करणी है! तेरे मर्म को वोही जानता है, जिस पर तू रहम करता है, जिस पर तेरी कृपा होती है। परम तत्त्व के मर्मों को हमारे कर्मों से नहीं पाया जाता, केवल कृपा से पाया जाता है। भगवान जब एक से अनंत हो जाते हैं, बिलग-बिलग रूप से मिलते हैं, उसके मर्म कोई नहीं जानते।

जब हम पढ़ते थे तब एक तृषातुर कौए का पाठ आता था। एक जग था। उसमें बिलकुल तले पर पानी था। कौए को प्यास लगी थी। वो जग के किनारे बैठता

है, पानी तक पहुंच नहीं पाता। होशियार कौआ बगल में कुछ कंकर थे वो पानी में डालता है। एक-एक कर डालने लगा। आखिर में परिणाम ये आया कि इतने कंकर डाले कि नीचे तले का वो पानी उपर आ गया। ये केवल जग का सत्य नहीं है, जीवन का सत्य है। हम सबमें वो सत्य तत्त्व है, लेकिन बिलकुल नीचे है। उसको उपर लाने का बहुत से मनीषीओं ने प्रयत्न किए इस देश में। इस सत्य-तत्त्व को उपर लाने के लिए किसीने ध्यान के प्रयोग किए, किसीने कुछ कहा। अनंत उपकार है इन महापुरुषों का, लेकिन चैतन्य आदि महापुरुषों ने, नामप्रेमी भजनानंदी महापुरुषों ने एक सरल उपाय बताया कि जीवन के सत्य-तत्त्व को, जो बिलकुल तले पर आ गया है, उसको फिर उपर लाने के लिए सरल और सहज उपाय, हम अपने जीवन के जग में एक-एक हरिनाम का कंकर डाले। 'हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल।' अंदर की चेतना ऊर्ध्वगमन हरिनाम से हो सकती है, अवश्य। जीवन को उपर उठाने के लिए केवल 'श्री राम जय राम जय जय राम।' मीरां ने जीवन के सत्य को कैसे उपर उठाया? 'मेरे तो गिरिधर गोपाल।' हम जैसों के लिए यही तो सरल उपाय है।

पंचतंत्र आदि ग्रंथों में जो कथायें आती है, जिसमें एक झूठ को बार-बार दोहराने से झूठ सत्य प्रतीत होने लगता है। झूठ सत्य नहीं होता, लेकिन प्रतीत होता है, भ्रांति पैदा हो सकती है। तो, रामनाम तो सत्य है, सत् को बार-बार दोहराने से सत् परम सत् हो जाता है; सत्य परम सत्य बन जाता है। ये कीर्तन

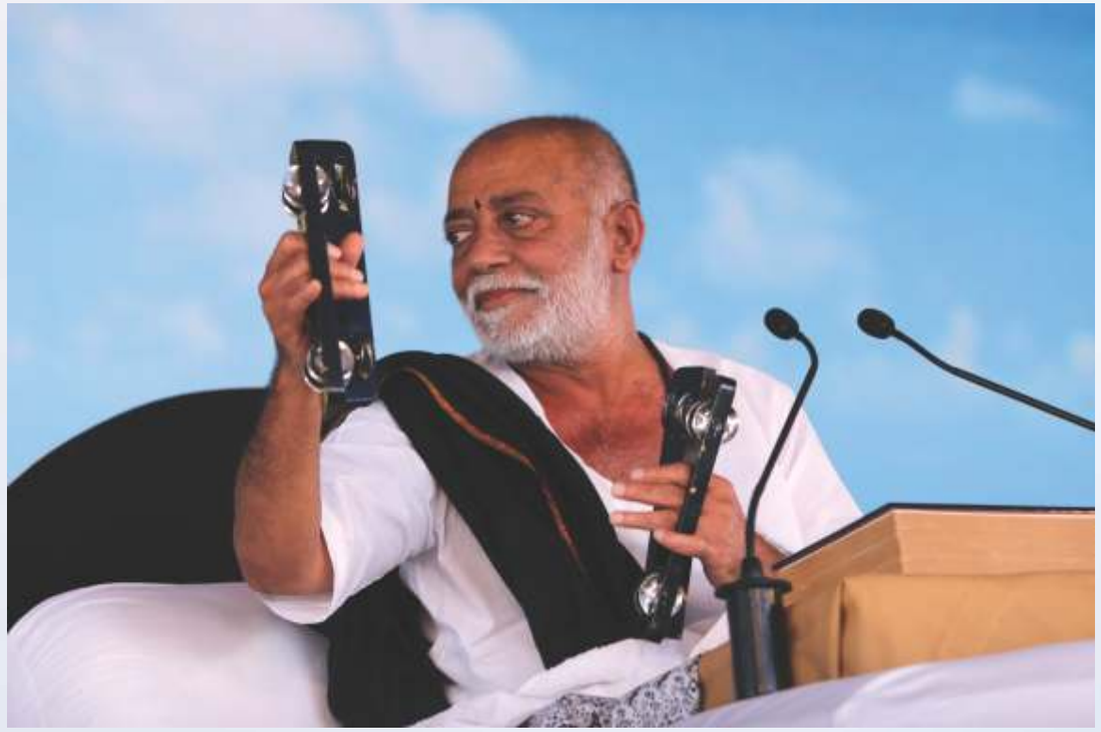

घेलछा नहीं है। ये संतों ने बड़ा अनुभूत प्रयोग विश्व को दिया है। नारद कीर्तन-आचार्य है। हनुमानजी कीर्तन करते हैं। ये बड़ा प्यारा और सफल प्रयोग है। ये भावुकता नहीं है। कीर्तन में नर्तन भी होता है, गायन भी होता है, ताल भी होता है, सुर भी होता है। धीरे-धीरे हरिनाम का मणि डालने से जीवन का सभी सत्त्व उपर उठाओ।

तो बाप, 'मानस-मरम' की चर्चा करते-करते जीवन उपयोगी और आत्म उपयोगी चर्चा हम मिलकर कर रहे हैं। याज्ञवल्क्यजी की व्यासपीठ सन्मुख बैठे भरद्वाजजी प्रश्न करते हैं कि रामतत्त्व क्या है? और याज्ञवल्क्य फिर भारद्वाज के सामने पूरा शिवचरित्र कहते हैं, भरद्वाज का मर्म जानने के लिए। शिव सती को लेकर कुंभज ऋषि के आश्रम में कथा सुनने जाते हैं। शिव ने परम सुख से कथा श्रवण की। सती के मन में दक्षपुत्री का अहंकार था। दक्षकन्या चूक गई, क्योंकि बुद्धि का अहंकार है! और शंकर भगवान ने कथा सुनते परम सुख प्राप्त किया। कथा पूरी हुई। फिर विदा मांगी। सती और शिव ने कैलास की यात्रा आरंभ की। बीच में दंडकवन आता था। उस समय राम की नरलीला चलती थी। सीता-अपहरण हुआ था। वियोगी राम लीला कर रहे हैं। और सती के मन में संदेह हुआ कि ये कोई ब्रह्म है? शिव ने कहा, 'हे देवी, आपका नारी स्वभाव है, संदेह न करो।' सती तर्क किये जा रही है। शिव ने सती को कहा, 'देवी, मेरे कहने से आपका भ्रम न गया हो तो आप जाकर परीक्षा कर लो।' और सदैव परीक्षा से निर्णय करना बुद्धि का स्वभाव होता है। भक्ति मार्ग में तर्क का अवलंबन न किया जाय। ये तर्क से बाहर है। सती गई। सीता का रूप लेती है! रूप बदला, लेकिन स्वरूप कैसे बदले? रूप जाहिर होता है, स्वरूप भीतर होता है। रूप अनेक होते हैं, स्वरूप एक होता है। रूप अवस्था के अनुसार बदलता रहता है, स्वरूप को अवस्था की बाध्यता नहीं होती।

राम-लक्ष्मण जानकी की खोज में दंडकवन में घूम रहे हैं। सती सीता बनकर राम के आगे चलने लगी। राम ने सीता के वेश में सती को पाया। बोले, 'मैं दशरथ का पुत्र राम आपको प्रणाम करता हूं।' और पूछा, 'मेरे पिता शंकर क्या करते हैं? आप अकेली क्यों घूमती है?' सब खुलासा हो गया! सती पकड़ी गई! मूल रूप में आकर सती भागी! सती को पीड़ा हुई। डरती शिव के पास आई। शिव ने कुशलता पूछी, 'किस तरह आपने परीक्षा की?' सती झूठ बोली, 'मैंने कोई परीक्षा नहीं की।' ध्यान में महादेव ने देख लिया; सती ने जो किया वो जान लिया। 'सती ने सीता का रूप लिया, सीता तो मेरी माँ है, अब इनसे कैसे संबंध रखूं?' हरि ने संकेत दिया। और शिव ने संकल्प किया कि जब तक सती का ये शरीर रहेगा, मेरा और उनका कोई संबंध नहीं होगा। आज से ये मेरी माँ है।

आकाशवाणी हुई। सती को डर लगा कि शिव ने कोई प्रतिज्ञा कर ली है। विश्वनाथ कैलास पहुंचे। भवन के बाहर शिव समाधि में बैठ गये। सत्तासी हजार साल बीतें। समाधि छोड़ दी। रामनाम का सुमिरन करने लगे। सती सामने आई। शिव ने सन्मुख आसन दिया और रसप्रद कथा सुनाने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति यज्ञ कर रहा है। देवता यज्ञ में जा रहे हैं। सती ने प्रश्न पूछा। शिवजी ने कहा, 'आपके पिताजी यज्ञ कर रहे हैं।' बोली, 'मैं जाउं?' बोले, 'जाने में कोई फायदा नहीं, आपको नहीं बुलाया है।' फिर भी पिता के यज्ञ में जाती है सती। शिव का अपमान न सहने पर वो अपना शरीर

अग्नि में समाविष्ट कर देती है। हाहाकार हो गया! सती जलते समय भगवान से मांगती है, 'भगवान जनम-जनम मुझे शिव की दासी बनाना।' इसी कारण हिमालय के घर सती पार्वती के रूप में प्रकट हुई। नगाधिराज के घर बेटी आने से बड़ा उत्सव हुआ। नारदजी आये, पार्वती का नामकरण संस्कार किया। हाथ की रेखा देखकर नारद ने हिमालय को कहा, उनको ऐसा पति मिलेगा जो दिगंबर, उदासीन होगा; उसके कोई माँ-बाप नहीं होंगे। सती समझ गई कि महादेव के सिवा ये कोई नहीं। पार्वती ने बहुत तपस्या की।

यहां भगवान शंकर सती के वियोग में घूमते रहे। ध्यान में बैठ गये। विष्णु प्रकट हुए। शिवजी को कहा, मांगने आया हूं, 'अब तुम पार्वती से ब्याहो। आपने सती का त्याग किया है, पार्वती का नहीं।' शिवजी ने कहा, 'आपका आदेश शिरोधार्य। ब्याहूंगा।' सप्तऋषि आये। शिवजी ने कहा, 'तुम जाकर पार्वती के प्रेम की परीक्षा करो और सप्तऋषि आये और पूछने लगे -

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।
हम सन सत्य मरमु कीन कहहू।।

'किसकी आराधना करती हो, क्या चाहती हो? मर्म बताओ।' बोली, 'मैं शिव के लिए तप करती हूं। मुझे शिव को पाना है। और शिव कहे कि नहीं, तो मैं शिव की भी नहीं मानूं।' सप्तऋषि आनंदित हुए, 'हे देवी, तू जगदंबा है। अब शिव मिल जायेंगे।' महादेव को जाकर कहा, 'महाराज, पार्वती का प्रेम अद्‌भुत है!' पार्वती के प्रेम की गाथा सुनते बाबा को फिर समाधि लग गई।

ब्रह्मा ने कहा, शंकर को जगाओ, कामदेव को भेजो। शंकर का ब्याह हो, उसके घर बेटा हुए तो ताड़कासुर मरे। कामदेव आया, समाधि में विक्षेप, महादेव ने काम को जला दिया। हाहाकार हो गया! भगवान समाधि से मुक्त हुए। और देवताओं प्रसंशा करने लगे। ब्रह्मा ने कहा, 'देवता मेरे पीछे पड़े है, कोई ब्याहे तो आनंद करे, आप ब्याहो।' शंकर ने हां बोली। शंकर काल परणशे, आज यहां विराम।

जब हम पढ़ते थे तब एक तृषातुर कौए का पाठ आता था। एक जग था उसमें बिलकुल तले पर पानी था। कौए को प्यास लगी थी। वो जग के किनारे बैठता है, पानी तक पहुंच नहीं पाता। होशियार कौआ बगल में कुछ कंकर थे वो पानी में डालता है। आखिर में परिणाम ये आया कि इतने कंकर डाले कि नीचे तले का वो पानी उपर आ गया। ये केवल जग का सत्य नहीं है, जीवन का सत्य है। हम सबमें वो सत्य तत्त्व है, लेकिन बिलकुल नीचे है। उसको फिर उपर लाने के लिए सरल और सहज उपाय, हम अपने जीवन के जग में एक-एक हरिनाम का कंकर डाले।

मानस-मरम
।। ४ ।।

बाप, कथा के आरंभ में सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। और पूरे संसार को मकरसंक्रांति के पावन पर्व की बधाई। शास्त्रीय आधारशीला है किसी भी पर्व के लिए। पर्व के चार स्तंभ है। जिस उत्सव में अधिक पवित्रता का प्रवाह हो, उसको पर्व कहते हैं। खास करके संक्रांत पर्व की बड़ी महिमा तो अल्हाबाद प्रयाग में है, वहां कितना पवित्र प्रवाह बह रहा है, गंगा-जमुना-सरस्वती! दूसरी आधारशीला, जिसके उत्सव आयोजन में एक प्रावीण्य हो, कुशलता हो। तीसरा, जिसमें पूर्व सूर्य का पावन हृदय से स्मरण हो।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।
तिन्हहि राम पद अति अनुरागा।

चौथे में मतभेद है, लेकिन सारभूत कहूं तो समग्र पर्व का हेतु मलिन न हो। मानो नव दिवसीय रामकथा का हेतु है, तो हेतु शुद्ध-बुद्ध हो, 'स्वान्तः सुखाय।'

प्रसन्नता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है

'मानस-मरम', जो इस रामकथा का केन्द्रबिंदु है। हमारी उपासना का मर्म क्या है? हम क्यों माला फैरते हैं? हम क्यों कथा कहते हैं? हम क्यों कथा सुनते हैं? क्यों बंदगी, तीर्थयात्रा आदि-आदि करते हैं? उसका अंततोगत्वा मर्म क्या है? प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक साधकों को, अपनी साधना, उपासना, आराधना के मर्म की समझ होनी चाहिए। कहीं हमारी उपासना का मर्म वासना तो नहीं? कहीं हमारे सभी सात्त्विक क्रियाकलाप के पीछे हमारी कोई वासना बुद्धि तो नहीं? उसकी खोज की जाय। और ये खोज केवल शास्त्रों में न की जाय, जीवन में की जाय। 'रामचरित मानस' के 'अयोध्याकांड' में ऐसा एक सांकेतिक सूत्र मेरी व्यासपीठ को प्राप्त होता है।

प्रसंग है अयोध्या के प्रासाद में, एक कुसंग के कारण मंगलभवन कोपभवन बन चूका है! हमारा जो पतन होता है उसके पीछे क्या मर्म है? हम उन्नत है इसका तो कारण है किसी की कृपा। जो भी ऊंचाई हमें मिले, वो राम की देन है, राम की कृपा है बस, लेकिन पतन क्यों हो रहा है? हम खुद महसूस करते हैं कि हम गिरे जा रहे हैं! इस करम के पीछे कौन-सा मर्म छिपा है?

पतन के कारण पांच है। 'महाभारत' का सार। हमारे पतन का एक कारण है, पापकर्म। पाप किसको कहे? 'रामचरित मानस' के 'अयोध्याकांड' में जाओ तो भरत ने कितने पापों का लिस्ट दिया है! जिस वचन से, जिस करम से, जिस सोच से हमारी पवित्रता, प्रसन्नता गिरने लगे वो सोच, वो वचन, वो करम पाप है। ओर कोई लम्बी-चौड़ी व्याख्या में मेरी व्यासपीठ जाना नहीं चाहती। क्योंकि आखिर में क्या चाहिए जीव को? प्रसन्नता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। संसारी लोग कभी कोई समय किसी न किसी रूप में प्रसन्न होते हैं, तभी चेतना का प्रवेश होता है।

दूसरा, अभिमान से पतन होता है। हमारे भजनिकों ने गाया है -

गरव कियो सोई नर हार्यो ...

तो, 'गरव कियो सोई नर हार्यो।' गर्व करने जैसा हममें कुछ है भी नहीं! निरंतर उन्नति हो, तो समझना तुम्हारा गर्व गुरुकृपा से कम हो रहा है, ये प्रमाण है। हम रोज आनंद करे तो समझना गर्व शून्य होता जा रहा है। अभिमान पतन का कारण बन सकता है।

तीसरा जानते हैं, अपने स्वार्थ में अंध बनकर बार-बार किये जानेवाली भूल हमारे पतन का कारण है। भूल ये पतन का कारण है। अतिशय किसी पर विश्वास करने से पतन शुरू हो जाता है। गुरु और ईश्वर बिना अतिशय विश्वास करना नहीं। परम विश्वास रखने का एक मात्र ठिकाना है गुरुद्वार, इष्ट आश्रय। क्या आपने कभी धोखे नहीं खाये हैं विश्वास में? अति विश्वास भी पतन का कारण बनता है। अथवा किसी पर विश्वासघात से भी पतन होता है। तो बाप, या तो विश्वासघात या तो अधिक विश्वास पतन का कारण बन सकता है।

पांचवां पतन का कारण है कुसंग। कुसंग, सोबत, कंपनी हमारे पतन का कारण बन सकती है। इसलिए सत्संग की महिमा है। उपासना करनेवाली एक महान महिला भगवती कैकेयी, मंथरा के कुसंग के कारण उपासना कब छूट गई पता नहीं! और वासना ने उपासना का स्थान ग्रहण कर लिया! कारण कुसंग। इस जगत में कुसंग से किसका पतन नहीं हुआ? एक प्रश्न आया है, ''इतना आतंक क्यों है? कभी ज्वालामुखी, कभी सुनामी, कभी ये, कभी ये, एक एक्सिडन्ट में इतने मर जाते हैं! भले भी मरते हैं और बूरे भी मरते हैं, ये क्या है? आज-कल जगत का रुद्र रूप क्यों है?'' ऐल नामका आदमी कश्यप को 'महाभारत' में पूछता है कि हमें बताईये ऐसा क्यों होता है? महर्षि कश्यप ने कहा, 'ऐल, ये रुद्रता बहिर् नहीं होती, प्रत्येक व्यक्ति में रुद्रता अपनी अंदर होती है।' एक भीषणता, एक रौद्र रूप हम सबके भीतर है। उसको हम कभी-कभी बुद्धिपूर्वक छिपाते हैं। हमारी विकृतियां, वासना अंदर बैठी है।

तो, ऐल ने पूछा, 'ठीक है, अंदर ऐसी विकृतियां है उसके कारण ये भूकंप, ये रुद्रता चलती है, लेकिन जो पुण्यात्मा है, जो अच्छे लोग है, वो क्यों मरते हैं?' बड़ा प्यारा समाधान 'महाभारत'कार देते हैं; कहते हैं, 'पुण्यशाली का दोष नहीं, लेकिन पुण्यशाली ने पापात्मा का संग किया, इसलिए संग के कारण उसको भोगना पड़ता है।' तो, कुसंग से बचो। कुसंग पतन का कारण है। हम इतनी ऊंचाई पर नहीं है कि किसी के भी कुसंग में रहे और हम लिप्त न हो जाय! कोई फकीर, कोई संत, कोई ओलिया, जो स्पेस में चला गया है, उसको कोई पकड़ नहीं सकता। न वो किसी को वश करता है, न किसी के वश में आता है। गुरु कौन? ध्यान देना, ये किसी को वश नहीं करेगा। वशीकरण गुरु का मामला नहीं, मदारियों का मामला है। ये सद्गुरु की आंखों का करिश्मा नहीं है। गुरु द्वन्द्व से मुक्त होते हैं। वो किसी के संग में रह सकते हैं अलिप्त, जलकमलवत्। हम जीव है, हम नहीं कर पाते। इसलिए हम संतसंग से प्राप्त विवेक से सोच समझकर संग करे।

बाप, उपासना से भरी एक महिला चेतना भगवती कैकेयी कुसंग में आ गई और उसमें उपासना के स्थान पर वासना प्रकट हो गई! दशरथ जाकर देखते हैं तो कैकेयी कोपभवन में फ़टे वस्त्र में आभूषण, सौभाग्य चिह्न करीब-करीब फैंक दिए और अकारण गिरी हुई है! दशरथ स्नेहातुर भी है और थोड़े कामकौतुक भी है! और प्रश्न करते हैं, 'प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी।' हे रानी तूं क्यों रिसाई? हाथ से छुआ और राजा के हाथ को धक्का दे देती है! तुलसीदास उपमा देते हैं कि जब सर्पिणी को भूख लगती है, तो अपने अंडे को खा जाती है। आज भरत, राम सबको दु:ख देने के लिए खड़ी है! और सबसे बड़ी भूख है इन्सान के अंदर रही वासना। ये दोउ वासना ये उनकी जीभ है।

दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।

और यहां 'मरम' शब्द का प्रयोग आया। मरम स्थान खोज रही है। क्योंकि मरम का केन्द्रबिंदु वासना है। मर्म यानी मतलब भी। कभी-कभी काल डंस लेता है, आदमी निर्णय नहीं कर पाता कि क्यों हो रहा है? सत्संग करके किसी को दोष मत दो, ये काल प्रभाव है। जो मर्म जाने, वो दोष नहीं देता, समझ लेता है। ये जरूरी है। इसी समय क्षमा करो, 'ठीक है, जाओ।' उसी समय गुरुकृपा को महसूसर करे।

'महाभारत' में कर्ण एक मरम वाक्य बोला है। 'महाभारत' का सत्रहवां दिन, उसमें क्या नहीं हुआ होगा? सब गये। द्रोण भी गये। और कौरवपक्ष का सेनापतिपद किसको दिया जाय? भीष्म बाणशैया पर। दुर्योधन को पूछा गया और फिर कर्ण को सेनापतिपद दिया गया। तो कर्ण सेनापति बना। कर्ण अकेला 'महाभारत' जीत लेता, अगर शैल्य सारथि न बनता। सारथि पर बड़ा आधार होता है। और शैल्य सारथिपना तो कर्ण का करता था, लेकिन प्रीति पांडव के प्रति थी! अर्जुन की जीत के पीछे कोई मर्म है तो सारथि क्रिष्न है। युद्ध पूरा हुआ और क्रिष्न घोड़े की लगाम फेंककर कूदकर नीचे ऊतर गये और अर्जुन को कहा, 'पहले तू नीचे ऊतरजा।' और आदमी समझ गया। और एक बात कहूं मेरे भाई-बहन, श्रेष्ठ की आज्ञा का कभी अनादर मत करना। इसके पीछे मेरे पास 'भागवत' का भी बल है और 'रामचरित मानस' का भी बल है। बड़ों का अतिक्रमण करने से आयुष्य कम होने लगती है, अपनी प्रभा, श्री कम होने लगती है, कीर्ति का क्षय होने लगता है। मुठ्ठी में आनेवाली परम प्रसन्नता छूट जाती है। और किसी के परम आशिष की मात्रा भी महत् को अतिक्रमण करने से कम होने लगती है। इसलिए पूरे शुद्ध-बुद्ध है ऐसे महा तत्त्व की आज्ञा का अतिक्रमण न करना। अर्जुन कूदकर नीचे ऊतरा, उसके बाद भगवान श्रीकृष्ण नीचे ऊतरते ही, पूरा रथ जलकर खाक हो गया! अर्जुन देखता रह गया! एक घटना ओर भी हुई। जैसे क्रिष्न रथ से नीचे ऊतरे उसी समय धजा से हनुमानजी ने भी विदा ले ली!

तो बाप, आज कर्ण का मुकाबला है। निर्णायक क्षण में युद्ध पहुंच चूका है। क्रिष्न आज थोड़े गंभीर है। क्योंकि कर्ण सामने है। और कथा आप जानते हैं। मर्म जानता था, वो कहना चाहता हूं। कर्ण के रथ का एक पहिया फंसा जमीन में। काल क्या काम करता है? सारथि

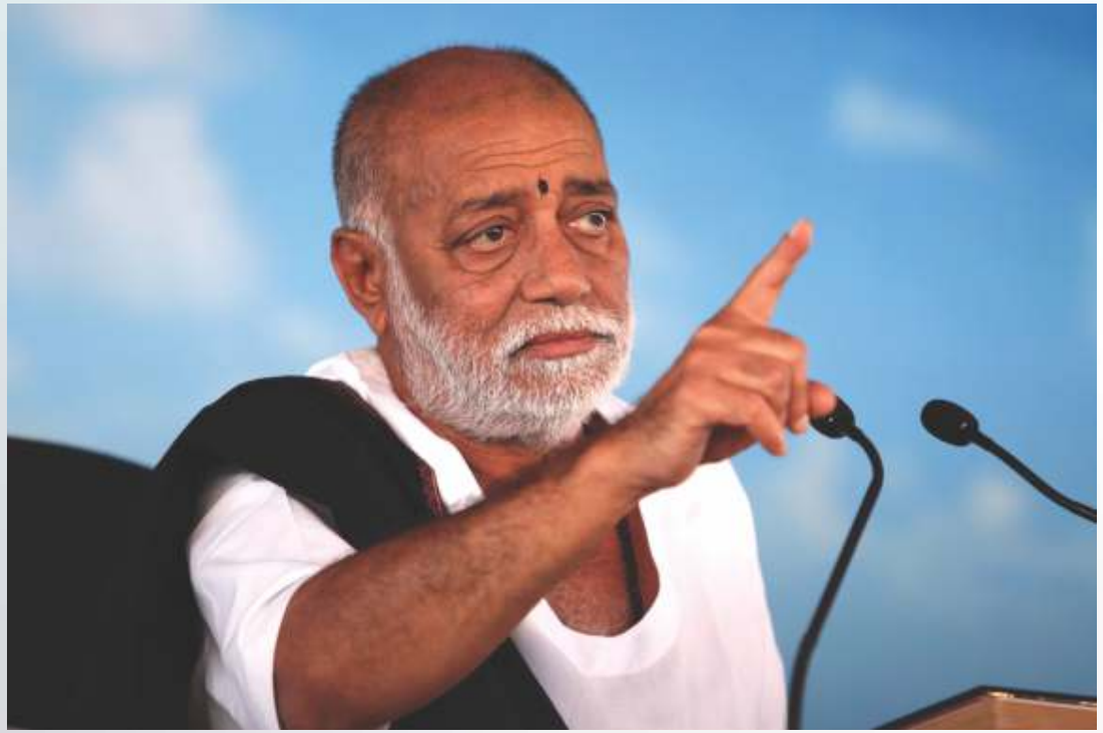

को पहिया निकालने को कह सकता था। पर काल चूका देता है! कर्ण नीचे ऊतरा और फिर गोविंद तो पीछे है ही। कर्ण जैसे सब हथियार रथ में रखकर पहिया निकालने नीचे ऊतरा। कर्ण ने ललकारा, 'थोडी देर मांग रहा हूं अर्जुन, युद्धनियम को याद करना, धर्म को याद करना, मेरे हाथ में अभी शस्त्र नहीं है और जिसके हाथ में शस्त्र न हो उस पर शस्त्रप्रहार करना धर्मनीति से विरुद्ध है।' और क्रिष्न बोले, 'जबान संभाल!' क्रिष्न क्रिष्न है। उनकी दलीलें छूती है, चूभती नहीं। परमेश्वर है, स्थूल काया में भी अद्वितीय है। 'कर्ण, चक्रव्यूह की योजना में तू भी था, तब धर्म कहां गया था?' क्रिष्न अभिमन्यु की बात लाया। 'शकुनि के दावपेच में तू भी सामिल था! और बार-बार द्यूत का निमंत्रण देकर छल करने में धर्म कहां गया था? जब द्रौपदी को लाई गई, एक स्थिति में थी बेचारी और तब तू गलीच भाषण कर गया है छोटा-सा, उस समय धर्म कहां गया था?' चूप कर दिया! क्रिष्न ने कहा, 'तू सोच।' ये आदमी ने आत्मसंशोधन किया और सोचते हुए मर्म पकड़ा गया कि मुझे एक शाप था, जब तेरे हाथ में शस्त्र नहीं होगा, तब कोई तुझे तीर मारेगा, तब तेरा निर्वाण होगा। मर्म समझ में आ गया। और क्रिष्न ने अर्जुन को कहा, 'उठा शस्त्र, प्रहार कर।' बड़ा करुण प्रसंग है। उस समय जब शिरच्छेद हुआ, कर्ण का मस्तक गिरा, उस समय क्रिष्न उदासीन है। गोविंद ने अपने को बहुत संभाला। खबर पहुंची कर्ण दिवंगत हुआ, उस समय कुंता ने मुंह ढांका। उसका मोभी गया है।

'महाभारत' के पांच 'क' बहुत अद्‌भुत है! एक क्रिष्न का 'क'; दूसरा कर्ण का 'क'; तीसरा द्रौपदी क्रिष्ना का 'क'; चौथा कुंता का 'क' और पांचवां क्रिष्न द्वैपायन व्यास का 'क'। व्यास सबका बाप है; कुरु, पांडव ये सबका बाप है। व्यास अपने कुल की कथा लिख रहे हैं 'महाभारत'। और स्वयं 'महाभारत' का एक पात्र भी है। सर्जक भी है और पात्र भी है। पांच 'क' ये 'महाभारत' का पंचप्राण है, ये मेरी व्यासपीठ का मानना है। यद्यपि कभी-कभी कुंता छोटी दिखती है, कर्ण उपर दिखता है।

कर्ण को ये मर्म याद आया कि मेरी मृत्यु कैसे होनेवाली है। और हुई तब कुंता को समाचार मिला। क्रिष्न उदासीन थे और माँ कुंता रो रही थी। काल पिशाच बनकर किसीसे बुलवाता है, ऐसा दशरथजी बोले हैं। कैकेयी, तेरा कोई दोष नहीं है, मेरा काल, मेरा समय इस रूप में तुझे बुलवा रहा है।

दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई।।

वासना ही पांच वस्तु पैदा कर देती है। और ये पांच वस्तु से 'महाभारत'कार कहते हैं, आदमी का पतन होता है। कभी अभिमान, कभी पाप, कभी कुसंग, कभी छोटी-बड़ी भूलें। अधिक विश्वास और किया हुआ विश्वासघात पतन का कारण हो सकता है। ये सब केन्द्र में, मूल में आ जाते हैं और हमारा पतन होता है।

अभियास जाग्या पछी बहु भमवुं नहि ने
नहि रे'वुं भेदवादीनी साथ रे;
कायम रे'वुं एकांतमां ने,
माथे सद्‌गुरुनो हाथ रे।
भाई रे! मेळो मंडप करवां नहि ने,
इ छे अघूरियानां काम रे;
गंगासती एम बोलियां ने,
भाळवा होय परिपूरण राम रे ...

दाद भाई परमार ने समढियाळा से गंगासती का पद भेजा है। गंगासती के शब्द लेकर प्रणव पंड्या ने पूरी गज़ल लिखी है -

एकतारानो मळ्यो छे वारसो, गंगासती।
तोय बेधारुं जीवे छे माणसो, गंगासती।
भाग्यमां तो एक पण वीजळीनो चमकारो नथी,
शुं करुं मोतीनुं ए समजावशो, गंगासती।

और एक गीत है -

होय ना साधुनां सरनामां।
पीछो कर्ये न पामो, सेवो तो मळवाना सामा।
जोळीमां साचवता केवळ कीर्तन केरी कंथा,
ओडकार नहीं, एने बस ओमकारनी झंखा।
एनी रावटियुं संगाथे धरम नाखतो घामा।
होय ना साधुनां सरनामां।
गई कथा 'मानस-मारग'मां आ पद गवायेलुं,
एना रचयिता छे वेश्णवाचार्य पूजनीय इन्दिरा बेटीजी महाराज -

लाव हथेली श्याम लखी दउं,
हैये हरिवर नाम लखी दउं।
आंगळी उपर आतम प्यारो,
कर उपर किरतार लखी दउं।
श्रावणी मननी भीतर हुं तो,
रोमे रोम रसराज लखी दउं।

कथा का क्रम। भगवान शिव के ब्याह की तैयारियां हुई। भगवान शिव को दुल्हे के रूप में सज़ाने के लिए निजिगन शिंगार कर रहे हैं। हाथ में कंगन की जगह सर्पों को लपेट दिया! शरीर पर ताजी भस्म का लेपन हुआ! वस्त्र में केवल एक मृगचर्म कटि भाग पर लपेट

दिया। यज्ञोपवित भी सांपों की है! हाथ में त्रिशूल है, डमरु बिराजमान है। अद्‌भुत रूप है! बैल की सवारी है। शिव का मूलरूप भी है और अध्यात्मरूप भी है।

शिवजी ने ब्याहते समय अपनी जटा का मुकुट बनाया। शिव ने जगत को बताया कि हम जीव है, हमारे पर कई प्रकार के संसार के जंजालों की एक जटा बिखरी हुई है। जीवन अस्तव्यस्त है, 'हे जीव, मैंने इस बिखरी हुई जटा को समेटकर मेरी शोभा बना दिया।' तुलसी कहते हैं, ममता बिलग-बिलग लट है, परेशान कर रही है। तब तुलसीदासजी ने जटा बटोरना सिखाया। हमारी सांसारिक प्रोब्लेम जो है, उस बिखरी हुई जटा से हम चिंता और उपाधि क्यों प्रकट करे? हम वहीं से भक्ति और भाव की गंगा प्रकट करे। ये हमें अध्यात्म अर्थ में भी बताया गया। सब आध्यात्मिक रूप भी माना गया है। जटा से गंगा बह रही है। भाल में स्वयं चंद्र मानो एक प्रकार का संयम का तेज, तपस्या का तेज। भस्मांग शिव मानो बहुत उत्साह के साथ ब्याहने जा रहे हैं। संकेत है कि शरीर पर जो भस्म लगाई है, मानो शरीर एक बार भस्म होनेवाला है, ये बात को दिखाया। नीरसता नहीं, लेकिन आगे के लिए सावधानी। शिव नंदी पर बैठकर ब्याहने गये, दुनिया को बताया कि मैं नंदी पर बैठता हूं। नंदी हमारे धर्मग्रंथों में धर्म का प्रतीकात्मक रूप है। शिव ब्याहने जा रहे हैं, तो धर्म की सवारी है। सब देवता बाराती बनकर आये। सब व्यंग कर रहे हैं! भगवान महादेव स्वयं हंस रहे हैं!

तो बाप, बारात हिमाचल प्रदेश पहुंची। सन्मान के लिए सब भाव से आये। महादेव पधारे है मंडप में मैना रानी के द्वार, मैना भी बेहोश! निजमंदिर में मैना को सखियां ले गई। सबको चिंता हो गई। नारद, सप्तऋषि, नगाधिराज हिमालय गंभीरता देखकर अंत:पुर में आये। नारद ने कहा, 'मुझे सुनो, ये पार्वती कौन है?' बोले, 'मेरी बेटी।' बोले, 'यही भूल है। ये तेरी बेटी नहीं है, तू इसकी बेटी है। ये पराम्बा, जगदम्बा तुम्हारे घर बेटी बनकर आई है और ये शिव परमात्मा है, महादेव है।' सद्‌गुरु ने परदा हटाया।

महादेव पधारे। देवताओं को प्रणाम करके भोलेनाथ सिंहासन पर बैठे। सखियों ने पार्वती को शृंगार किया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। नगाधिराज हिमालय पिघलते हैं। विदाई हुई। महादेव कैलास पहुंचे। देवताओं ने विदाय ली। कुछ काल बीता। शिवकथा संक्षेप में याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी को सुनाई, 'तुम्हारे मर्म को मुझे जानना था इसलिए हे भरद्वाजजी, आपने पूछा था रामचरित, मैंने सुनाया शिवचरित।' शिव-पार्वती का विवाह हुआ।

> 'महाभारत' के पांच 'क' बहुत अद्‌भुत है! एक क्रिष्न का 'क'; दूसरा कर्ण का 'क'; तीसरा द्रौपदी क्रिष्ना का 'क'; चौथा कुंता का 'क' और पांचवां क्रिष्न द्वैपायन व्यास का 'क'। व्यास सबका बाप है; कुरु, पांडव ये सबका बाप है। व्यास अपने कुल की कथा लिख रहे हैं 'महाभारत'। और स्वयं 'महाभारत' का एक पात्र भी है। सर्जक भी है और पात्र भी है। पांच 'क' ये 'महाभारत' का पंचप्राण है, ये मेरी व्यासपीठ का मानना है।

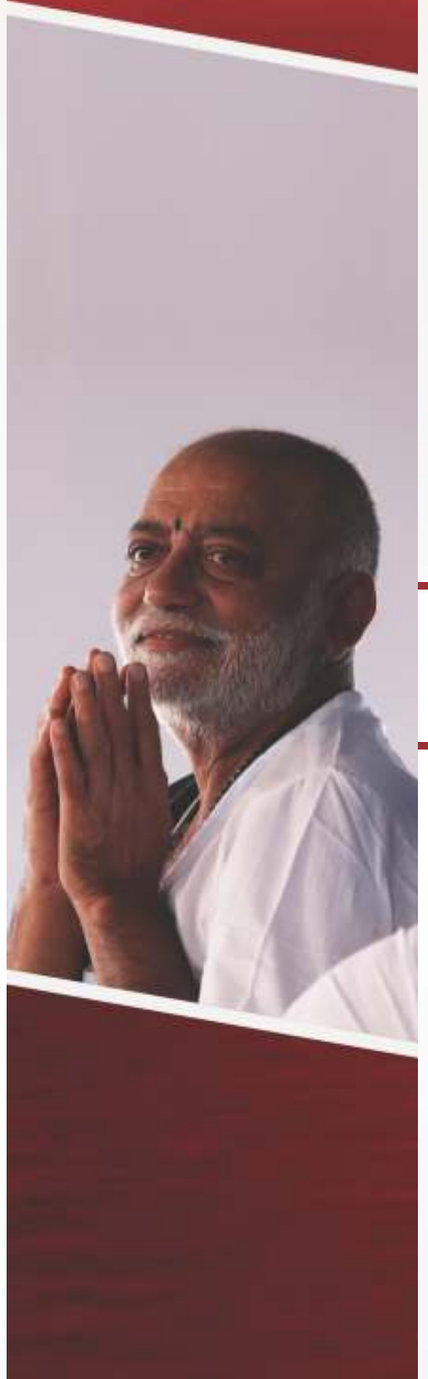

कल मैंने आप सबको चौदह जनवरी मकरसंक्रांति की बधाई दी थी और कल ईद भी थी ये मेरे मन से निकल गया था। मेरे देश के और पूरे संसार के सभी ईस्लाम भाई-बहनों को देर से भी सही, लेकिन ईद की बहुत-बहुत बधाई और मुबारकबाद। पुन: एक बार सबको बधाई और जो दो पंक्तियों का आश्रय व्यासपीठ ने किया है 'मानस-मरम', जिसमें सप्तऋषियों ने सती को पूछा कि आप किसकी आराधना करती है और आराधना के फलस्वरूप तुम क्या चाहती हो? इसके पीछे क्या रहस्य है? क्या मतलब है? क्या मरम है? सो बताओ। और जनकपुर में सीयाजु के स्वयंवर में इकट्ठे हुए राजा-महाराजा और सब लोग राम जब प्रवेश करते हैं तब अपनी-अपनी आंखों से प्रभु का दर्शन करते हैं और सबको लगा कि भगवान ने हमारे सामने देखा है! बड़ी रहस्यपूर्ण बात है। एक शे'र है, किसका है, पता नहीं -

दीवाना कर दिया मुझे उसने एक बार देखकर।
मैं कुछ न कर सका लगातार देखकर।

शिक्षा सबसे लो, दीक्षा कोई एक से लो, भिक्षा केवल अपने सद्‌गुरु से लो

यही है श्रेष्ठ की नज़र और हम जैसे सामान्य की नज़र का फ़र्क! कोई बुद्धपुरुष एक बार देखता है, दबी-दबी चेतना का उद्‌घाटन होने लगता है। और कभी-कभी हम सब बार-बार देखते हैं तो भी कुछ न भी हो!

तो बाप, हमारी जीवनजागृति के लिए हम विशेष प्रसन्न रह सके, इसलिए तत्त्वत: जीव का मर्म क्या है, जीवन का मर्म क्या है, इस जगत का भेद क्या है? इतना तो भेद बता दो। प्राचीन भजनों में भी पाया गया कि हे गुरु, हमें इतना भेद बता दो।

एक बार एक सूफी संत एक फकीर के पास गया। उसने कहा, 'बाबा, मैं बिलकुल शून्य हो गया हूं!' एक खाली पना, एक सन्नाटा! सत्संग में सन्नाटा वरदान है, आवश्यक है। संत ने पीर से कहा, 'मैं शून्य हो गया हूं।' वो पीर कहता है, मुर्शीद कहता है, 'क्या हो गया, शून्य?' बोले, 'हां।' 'तो, शून्य को साथ-साथ लेकर क्यों फिरता है? शून्य भी छोड़ दे। असली सन्नाटा तो तभी होगा कि शून्य भी छोड़ दे। तुम शान्त हो।'

बिलकुल सनातन सत्य है, हम जितना पवित्र होना चाहते हैं, इतने हम हैं। हमने क्यों मान लिया कि हम बूरे हैं? मध्यकालीन संतों ने सूक्ष्मदर्शक काच से अपने दुर्गुण गिनाये। थे नहीं, लेकिन गिनाये हमें सावध करने के लिए। बाकी क्या सूर इतने पापी थे? तुलसी इतने पापी थे? लेकिन कहते हैं -

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी।।

ये दीनता है। तुलसी कहते हैं, मैं प्रसिद्ध पातकी हूं, छूपा हुआ नहीं। किसीका दामन पकड़ो तो ऐसे पकड़ो। मेरे पास एक शे'र है, किसका है, पता नहीं -

उनका दामन आ गया मेरे हाथ में,

मुश्किलों अब तुम औकात में रहो।

सद्गुरु का कोई सूत्र, कोई माला, मेरे हाथ में आ गये, सब दामन है। मुश्किलों अब तुम औकात में रहो! हरकतें, मुश्किलें अब तू क्या कर सकती है? मेरे हाथ में मेरे सद्गुरु का दामन आ गया। तू क्या मुझे पराजित कर सकती है? सोचो, तुलसी कहते हैं, मैंने तेरे से रिस्ता जोड़ दिया है।

तो बाप, जितना हम पवित्र होना चाहते हैं इतना हम है। कितना प्यारा सूत्र है! मेरे पास मेरे गोस्वामीजी का बल है, उसने कहा है 'मानस' में -

चेतन अमल सहज सुखरासी।

ये जीव निर्मल है, ये जीव पवित्र है। जितना चाहिए पवित्र इतने हम पहले से है। किसी के वचन से, किसी के दर्शन से, किसी की शालीनता से, डूबने से ये डेवलप होता है। हम चाहते हैं प्रसिद्धि! छोटे-बड़े हेतु, जिसका कोई मूल्य नहीं है! बाप, याद रखना, आपके कानों में रख रहा हूं, बुद्धपुरुष का एक वाक्य, तुम जो होना चाहते हो वो ओलरेडी हो। तू वो ही हो, पता नहीं! इसलिए हम कहते हैं हमें दुआ दो, थोड़ा डेवलप हो। और यदि आपने अपनी छोटी-सी सोच के कारण मान लिया कि मैं ये होना चाहता हूं और आप ये नहीं हो पाये और कुछ दूसरा हो गये तो समझना तुम वही हुए है, जो तुम थे। चैतन्य का बीज हम सबके पास है। वही वटवृक्ष हो सकता है; चाहिए अच्छी खाद, अच्छा पानी, अच्छी सुरक्षा। सद्गुरु हममें रही चेतना को विकसित करने में सहायक होता है।

भगवान बुद्ध, बुद्धता प्राप्त करने के बाद जब फिर कपिलवस्तु गये। उनके पिता से बुद्ध मिले, तो पिता ने बुद्ध को कहा, 'पुत्र, मैं तेरा स्वागत करता हूं।' बुद्ध ने मुस्कुरा दिया, 'मेरा शाल्यकुल समाप्त हो गया, मेरा बुद्धकुल शुरू हो गया।' माँ-बाप से गोत्र में, जाति में, वर्ण में जन्म होता है, गुरुकुल में हमारी असलियत का जन्म होता है।

द्वैत क्रोध पैदा करेगा। इनके मर्म समझो। शिक्षा हरेक से लो, दीक्षा केवल एक से लो। शिक्षा में श्रेणी बदली जाती है, दीक्षा एक से होती है। बुद्धपुरुष जो कहे सो करना। कोई बुद्धपुरुष कहे, 'मैंने तुम्हें यहां भेजा।' तो चले जाना। लेकिन भिक्षा तो गुरु के घर की ही लेना। जैसे शंकर ने भेज दिया गरुड को। शंकर ने कहा, 'मैं तुम्हें एक जगह भेज दूं, जहां निरंतर रामकथा हो रही है। ये तेरा मोह, तेरा भ्रम क्षण में नहीं मिटनेवाला।'

जब बहु काल करीअ संतसंगा।

तबहि होइ सब संसय भंगा।।

जहां निरंतर कथा होती है। बुद्धपुरुष जो कहे सो करना।

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला।

तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला।।

राम भगति पथ परम प्रबीना।

ग्यानी गुन गृह बहु कालीना।।

रामभगति के मारग में परम प्रवीण हे गरुड, एक ऐसा बुद्ध दिखाउं तुम्हें। सद्गुण और ज्ञान का भंडार है, पर बहु कालीना। शिक्षा सबसे लो। दीक्षा शायद कोई बुद्धपुरुष कहे यहां जाओ, लेकिन भिक्षा तो केवल अपने बुद्धपुरुष से ही पाना। पूछो, लेकिन गुरु का घर मत भूलो। तुलसी ने ये सब सीखाया है -

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं।

तातें बिनय करउँ सब पाहीं।।

प्रमाण तो देखिये, मुझे मेरे बुद्धि-बल पर भरोसा नहीं इसलिए मैं सबको पूछता हूं, मुझे राह दिखाओ।

करन चहउँ रघुपति गुन गाहा।

लघु मति मोरि चरित अवगाहा।।

मैं राम को गाना चाहता हूं। लेकिन मेरी बुद्धि बहुत छोटी है और चरित्र बड़ा विशुद्ध है। मैं बड़ी उच्च चीज चाहता हूं। तुलसी सबके पास गये हैं, लेकिन गुरुगृह नहीं छोड़ा।

एक दर्दे मुश्तकील की मुझे तलाश थी।

अच्छा हुआ जो तुम से मुलाकात हो गई।।

मुश्तकील मानी स्पर्धा। एक कायमी पीड़ा की मुझे खोज थी। एक स्थायी भाव। हे गुरु, अच्छा हुआ कि तेरे से भेंट हो गई। अब मेरा दर्द स्थायी हो जाएगा। जिस पीड़ पर हजारों खुशियां कुरबान हो। एक और शे'र -

नन्हा-सा एक चराग बुज़ाकर गया।

तूफ़ान अपनी जात दिखाकर गया।

जब किसी छोटे को तुम पीड़ित करते हो, तब तुम कोई होशियारी नहीं करते हो, अपनी जात दिखाते हो!

तो, भोलेबाबा ने भुशुंडि के पास गरुड को भेज दिया। तथागत बुद्ध ने कहा, 'आप मुझे पुत्र मत कहो, अब मेरा दूसरा कुल है।' जैसे जगदगुरु आदि शंकर कहते हैं, अब कुछ नहीं बचा, सब खत्म हो गया, अब तो केवल यही है -

चिदानंदरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।

माता-पिता से जन्म होता है मृण्मय काया का, मिट्टी की काया का। गुरु के गर्भ से साधक निकलता है, चैतन्य की काया लेकर। और ऐसे महापुरुष के पास जाकर हम पहचान सकते हैं कि हम जितना पवित्र होना चाहते थे इतने हम पहले से थे। जिसको हम पाना चाहते हैं, ओलरेडी हम उसे पाये हुए हैं; पहचान बाकी है। ये सत्संग पहचान का एक तरीका है। न जाने किस रूप में नारायण मिल जाय? इसलिए किसी का भी अनादर किया तो चूके ईश्वर को! क्षण-क्षण हम परमात्मा को चूके जा रहे हैं। इसलिए तुलसी ने कह दिया कि -

सीय राममय सब जग जानी।

करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

फिर से मेरे श्रावक भाई-बहन, इस सूत्र को सोचिएगा। किसी बुद्धपुरुष का वाक्य कि हम जितना पवित्र होना चाहते हैं, इतने पवित्र हम पहले से है। क्योंकि मेरे गोस्वामीजी फरमाते हैं -

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

एक जिज्ञासा है, 'बापू पिछले चार दिन से 'मानस-मरम' के बारे में हमें सुन रहे हैं, आप हमें बता सकेंगे कि समाधि का मरम क्या है?' समाधि का रहस्य क्या? समाधि का राज़ क्या? बड़ा कठिन है। बड़ा कठिन है, पहुंचे हुए लोग, जागे हुए लोग, बता भी सकते हैं, अवश्य। लेकिन मैं तो 'मानस' के आधार पर आपको प्रतिप्रश्न पूछुं कि पहले आप मुझे अपनी निंद का मरम समझाओ, समाधि छोड़ो! आप सोते क्यों हो? हमारी निद्रा का मर्म क्या है? निद्रा का मर्म समझ में आये तो शंकराचार्य ने वादा किया है, 'निद्रा समाधिस्थिति।' तुम्हारी निद्रा ही समाधि हो जाएगी। शंकराचार्य जगद्गुरु कहते हैं, मेरी आत्मा महादेव, तू हो; मेरी बुद्धि पार्वती है। मेरे सहचर, मेरे प्राणतत्त्व है। वो ही जगद्गुरु हमें कहते हैं कि मेरी निद्रा समाधि है। मेरे विषय भोग कि रसिकता वो तेरी पूजा है, मान ले। मेरे पास जो है, वो पूजा करूं! जहां-जहां संचरु, जहां-जहां जाउं हे महादेव, मेरी परिक्रमा समझ लेना। जहां तुम्हारा काम-काज है जाओ, जाना चाहिए। हम संसारी है। ओफिस, दुकान जहां भी जाओ, लेकिन थोड़ा भाव बदलो। भीतरी भाव बदलो कि मैं परिक्रमा करने जा रहा हूं। मेरी गिरनार-परिक्रमा है, कैलास-परिक्रमा है। मैं काशी क्षेत्र की परिक्रमा कर रहा हूं, इसी भाव से जाओ। निद्रा का मरम समझ में आये, तो निद्रा समाधि में उसी क्षण परिवर्तन हो जाएगी। करवट बदलना मात्र है।

गुरुनानक भी कहा करते थे और ठाकुर रामकृष्ण भी कहते हैं। ओर कुछ नहीं करना है; मन को इधर से लेके इधर बोना है, चावल की खेती की तरह। तो बाप, समाधि का अर्थ क्या है? पहले स्थूल अर्थ में देखो कि हम सो क्यों नहीं पाते? हमारी व्यस्तता हमें सोने नहीं देती, ठीक है? तुलसी स्वयं लिखते हैं -

भूख न बासर नींद न जामिनि।

जिसके उपर बहुत करुणा है, वो नहीं सो पाता। और जिसके बहुत दुश्मन हो, वो सो नहीं पाते। अथवा तो जिसके शरीर में बहुत रोग है, पीड़ा है शरीर में तो आदमी सो नहीं पाता। परिवार में कोई दु:खी है बेटी, बच्ची, पत्नी, पुत्र, माता, तो कोई सो नहीं पायेगा। तो, जिससे हमारा ममता का संबंध है उससे कोई पीड़ा है तो, हमें दु:ख है तो, हम सो नहीं पाते। थोड़े विक्षिप्त हो जाय तो, किसी का दु:ख सुनते तो भी आदमी सो नहीं पाता।

तुम्हारे मन में बहुत विचार करने की आदत है तो तुम सो नहीं पाते। जो बहुत विचार आते हैं। और विचार दो प्रकार के होते हैं। ये सब मनोविज्ञान है। इसका नाम ही 'मानस' है। 'मानस' का एक अर्थ होता है हृदय और दूसरा अर्थ 'मानस' का है आदमी का मन भी। ज्यादातर विचार सोने नहीं देते हैं। किसी के लिए बदला लेने का या तो किसीके लिए बलिदान देने का विचार ये रात को सोने नहीं देता! मर्म पकड़ो, क्यों निंद नहीं आ रही है? कभी-कभी ये सोचो, कभी आप बहुत सुखी हो जाओ; आप जिसको मिलना चाहते थे वो मिल गया; इससे बाते हो गई, आप सो नहीं पाओगे! कभी सोचा नहीं था कि मिल पायेंगे! चंद मिनिटों की मुलाकात भी दुर्गम थी, वहां हमें घंटेभर बात की, फिर निंद हराम है! न सुख सोने देता है, न दु:ख सोने देता है!

अब तीन बातों से आपके हृदय तक पहुंचने की कोशिश करूं। अध्यात्मजगत के सूत्र माने जाय। एक, चिंता हमें सोने नहीं देती। ये चिंता प्राकृत जगत की नहीं। लेकिन चिंता का मेरा मतलब जैसे 'महाभारत' में क्रिष्न को चिंता होती है। यहां भीष्म ने प्रतिज्ञा कर ली है, 'कल पांडवमुक्त पृथ्वी कर दूंगा।' भीष्म बोले, फिर क्या? पांडव अपनी शिबिर में आये उसी समय पता लगा कि भीष्म ने प्रतिज्ञा ली है कि कल पांडवमुक्त जगत होगा। और सबसे बड़ी चिंता तो अर्जुन को होनी चाहिए थी। लेकिन कहते हैं, बात सुनकर तुरंत युद्ध की शिबिर में छोटा-सा माथे का शिरहाना बनाकर अर्जुन एक क्षण में सो गया! अर्जुन को टटोला गया कि तुम्हें निंद कैसे आती है? कल भीष्म की प्रतिज्ञा है, नहीं रहेंगे! बार-बार उसको जगाया गया, 'जाग, युद्धनीति तैयार करें।' अर्जुन करवट बदलकर कहता है, 'सोने दो ना।' 'तू कैसे सो सकता है?' बोले, 'मुझे भरोसा है, क्रिष्न जाग रहा है।' और जिसका माधव जाग रहा है उसको कौन-सी चिंता है? कोई बुद्धपुरुष, कोई सद्गुरु जो हमारी चिंता करता है, तो हम सोते हैं।

एक, चिंता। दूसरा, चिंतन बुद्धपुरुष को सोने नहीं देता। चिंतन ये दूसरा पड़ाव है। चिंता से ऊंचा चिंतन है। उसका ब्रह्मचिंतन, वेदचिंतन, शास्त्रचिंतन वो सोने नहीं देता। और अच्छा चिंतन हो जाता है, तो बुद्धपुरुष को लगता है कि कब सुबह हो, मैं किसी को बांटुं। और तीसरा, सुमिरन सोने नहीं देता। गोस्वामीजी ने आखिर में 'मानस' ने लिखा, ओर कुछ न हो तो कुछ न करना। मैंने पूरा शास्त्र तुम्हारे सामने रख दिया।

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।

तो बाप, अखंड सुमिरन सोने नहीं देता। सुमिरन परिणामदायी होता है। पुकार की ताकत होती है। चिंता जगाये रखती है, चिंतन बुद्धपुरुष को जगाये रखता है और परम का सुमिरन जगाये रखता है।

तो, समाधि का मतलब क्या, वो पूछने से पहले हम सो नहीं पाते, इसका मतलब समझ में आये तो फिर समाधि को जानने की इच्छा नहीं रहेगी।

परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु।।

फिर 'मरम' शब्द का प्रयोग है। हेतु भी मरम। पहले स्थूल, दूसरा आध्यात्मिक। कैसे भी राम-राम रटो, भोर हो जाती है, उजाला हो जाता है। सुमिरन मिथ्या नहीं जाता। महिपति के सुबह न उठने पर जब सुमंत कैकेयी के कोपभवन में आता है तब कैकेयी कहती है, महिपति क्यों नहीं सो पाये, मुझे पता नहीं। हेतु जानने के लिए जगदीश को बुलाईये। तो, जगदीश ही मर्म जानता है, ओर कोई नहीं जानता। राम जाने, मरम क्या है? फिर आगे जाओ तो एक आदमी इस रामकथा की यात्रा में मिलता है कि मैं मर्म जानता हूं। वनयात्रा में एक पात्र आता है -

मागी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।

वनवास की यात्रा में प्रभु गंगा के तट पर जाते हैं और प्रभु ने गंगापार होने के लिए कहा कि हमें नौका में ले चलो। तो, उसने कह दिया, 'मैं नौका नहीं दूंगा, क्योंकि मैं आपका मरम जानता हूं।' इससे आगे -

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा।

वाल्मीकि का निवेदन कि भगवान के मरम को ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नहीं जान पाते। तो, जहां बड़े-बड़े भी मरम जान नहीं पाता। लेकिन वो जनाना चाहे, तो छोटा भी जान पाता है।

याज्ञवल्क्य भरतद्वाजजी से कथा सुना रहे हैं कि एक बार भगवान वटवृक्ष के नीचे प्रसन्नचित्त बैठे हैं। योग्य अवसर पाकर माँ भवानी शिव के पास गई। महादेव आदर देकर अपने वामभाग में बिठाते हैं। भवानी कहती हैं, 'भगवान, आप त्रिभुवन के गुरु हो। भगवंत, मेरा संदेह मिटना चाहिए। बताईये, राम क्या है? मुझे रामकथा के द्वारा रहस्य समझाईये।' शिवजी रघुपतिचरित्र गाने के लिए हर्षित होकर गाना शरू करते हैं। और भगवान महादेव राम के निराकार रूप का वर्णन करने लगे, 'परम तत्त्व वो है, जो बिना पैर चलता है, बिना शरीर सबको छूता है, बिना नेत्र सबको देखता है। अलौकिक करनी है जिसकी, जिसकी वेद महिमा नहीं कर सकते, वो तत्त्व रामरूप बनकर आया।'

रामकथा में रामजन्म के पूर्व रावण के अवतार की कथा लिखी गई। रावण ने कड़ी तपस्या की। दुर्गम वरदान प्राप्त किये। मिले हुए वरदानों का दुरुपयोग करने लगा। पृथ्वी त्रस्त हो गई। पृथ्वी पर अत्याचार फैल गया। पृथ्वी गाय का रूप लेकर ऋषिमुनियों के पास गई, 'मुझे बचाओ!' देवताओं ने कहा, 'हम लाचार है, क्या करें?' सब ब्रह्माजी के पास गये। देवताओं ने स्तुति की और आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो, मैं अवध में प्रकट होउंगा।'

अयोध्या का सार्वभौम राष्ट्र। वर्तमान राजाधिराज अवधपति ज्ञानीयोगी और भक्तियोगी है। रानी-राजा दोनों मिलकर हरि भजते हैं। ऐसा पावन गृहस्थ जीवन। बूढ़ापा आ चूका है और पुत्र नहीं है। सम्राट गुरुगृह गये। निज सुखदु:ख सुनाये। शृंगि को बुलाया गया, पुत्रकामेष्टि यज्ञ हुआ। यज्ञदेव प्रसाद की खीर लेकर प्रकट हुए। वशिष्ठजी को दिया। बोले, 'राजा को दो, यथाजोग रानियों में बांट दे।' राजा ने आधा प्रसाद कौशल्या को, कैकेयी को पा और कैकेयी और कौशल्या के हाथ से सुमित्रा को दो भाग में दिया। रानियां सगर्भा स्थिति महसूस करने लगी। जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि, पंचांग अनुकूल हुआ। प्रभु को प्रकटने की बेला आई। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नौमी तिथि, मध्याह्न का भास्कर। सब देवता विमान को लेकर आकाश में आ गये। तीनों लोक में परमात्मा की गर्भस्तुतियां होने लगी। सब प्रसन्नचित्त है। माँ कौशल्या के भवन में कुछ प्रकाश विशेष की अनुभूति हुई। और जगनिवासी परमात्मा, ब्रह्म नारायण कौशल्या माँ के भवन में चतुर्भुज विग्रह प्रकट हुए -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्‌भुत रूप बिचारी।।

माँ कौशल्या ने हाथ जोड़े, 'हे अनंत, मैं किन शब्दों में आपकी स्तुति करूं?' माँ को ज्ञान हुआ। प्रभु मुस्कुराये। संत लोग से सुना है, इसके बाद माँ ने मुंह फेर लिया। बोली, 'आपने मनुष्य रूप में आने का वचन दिया था और ये नारायण रूप में आप आये!' प्रभु ने बोला, 'मैं क्या करूं?' माँने कहा, 'आप दो भुजावाले हो जाओ और मनुष्य जनम लेते हैं इतने छोटे हो जाओ।' प्रभु नवजात शिशु की तरह छोटे हो गये। बोले, 'माँ। अब?' 'आप बड़े की तरह बोलते हैं, बालक की तरह रोओ।' भगवान माँ की गोद में बालक की तरह रोने लगे और प्रभु का रामरूप में प्रागट्य हुआ। दशरथ ने सुना कि पुत्रजन्म हुआ तो ब्रह्मानंद हुआ। फिर महाराज को परमानंद होने लगा। बोले, 'गुरुदेव को बुलवाओ, बाजे बजवाओ, उत्सव मनाओ।' रामजनम की बधाईयां शुरू होती है।

> चिंता हमें सोने नहीं देती। ये चिंता प्राकृत जगत की नहीं। कोई बुद्धपुरुष, कोई सद्‌गुरु जो हमारी चिंता करता है, तो हम सोते हैं। दूसरा, चिंतन बुद्धपुरुष को सोने नहीं देता। चिंतन ये दूसरा पड़ाव है। उसका ब्रह्मचिंतन, वेदचिंतन, शास्त्रचिंतन वो सोने नहीं देता। और तीसरा, सुमिरन सोने नहीं देता। अखंड सुमिरन सोने नहीं देता। सुमिरन परिणामदायी होता है। पुकार की ताकत होती है। चिंता जगाये रखती है, चिंतन बुद्धपुरुष को जगाये रखता है और परम का सुमिरन जगाये रखता है।

कथा-दर्शन

- हनुमानजी प्राणतत्त्व है। हनुमानजी पंचप्राणों की रक्षा करते हैं।
- **रामकथा ये धार्मिक सम्मेलन नहीं है, ये प्रेमयज्ञ है।**
- विचारों की दिशा बदलने का एक सात्त्विक प्रयोग है भगवत्कथा।
- कथा फ़कीर नहीं बनाती, कथा अंदर का अमीर पैदा करती है; अमीरी को उजागर करती है।
- असाध्य रोगों की औषधि है हरिनाम।
- भक्ति मार्ग में तर्क का अवलंबन न किया जाय, ये तर्क से बाहर है।
- भक्ति के बिना वैराग का मरम खुलेगा नहीं।
- धर्म में नकल न करो, धर्म हमारा स्वतंत्र अधिकार है।
- परम तत्त्व के मर्मों को हमारे कर्मों से नहीं पाया जाता, केवल कृपा से पाया जाता है।
- सद्गुरु पदरज का अनुसंधान बड़ा कठिन है।
- प्रारब्ध बदलना है तो बुद्धपुरुषों का संग करो।
- बुद्धपुरुष हंसता होना चाहिए।
- **श्रेष्ठ की आज्ञा का कभी अनादर मत करना।**
- गुरु द्वन्द्व से मुक्त होते हैं।
- वशीकरण गुरु का मामला नहीं, मदारियों का मामला है।
- शिक्षा हरेक से लो, दीक्षा केवल एक से लो।
- प्रेम से त्याग आता ही है, सत्य से निर्भयता आती ही है और करुणा से अहिंसा प्रकट होती ही है।
- प्रेम बोली में व्यक्त नहीं होता।
- प्रेम का गणित संसार की किताबों से नहीं जाना जाता।
- सात्त्विक आहार से सत्त्वशुद्धि होती है।
- प्रभाव उधार होता है, स्वभाव नगद होता है।

मानस-मरम
॥ ६ ॥

'मानस-मरम', जिसके बारे में 'रामचरित मानस' में जो कुछ सूत्रपात हुआ है, उसको केन्द्र में रखते हुए हम संवाद कर रहे हैं। मर्म जानना यानी भेद जानना। मर्म यानी रहस्य, मर्म मानी एक विशेष अर्थघटन। मर्म का एक अर्थ होता है अंत:करण की गहराई से पाया गया सार्थक अर्थ; जीवनकोश से मिला हुआ एक सार्थक अर्थ। एक शब्द हमारे यहां है 'मर्मस्थान।' जैसे आदमी को किसी को परेशान करना है, किसीको कुछ मुश्किल में डालना है, तो वो मर्मस्थान खोजता है कि उसका मर्मस्थान कहां है? जैसे लक्ष्यवेध किया जाता है, मत्स्यवेध किया जाता है, वैसे मर्मवेध किया जाता है।

'रामचरित मानस' में बिलग-बिलग स्थान पर 'मर्म' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहां बिलग-बिलग अर्थ समाहित है। एक अर्थ से काम नहीं चलेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की रुचि भिन्न है। भिन्न रुचि के

रामकथा धार्मिक सम्मेलन नहीं है, प्रेमयज्ञ है

समाधान के लिए महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न अर्थ की सृष्टि की है। हम संसार में रहते हैं तो हमें तीन प्रकार के लोग मिलते हैं। केवल मनुष्य को केन्द्र में रखकर कह रहा हूं। तीन प्रकार की हमारी संगत होती है। तीन प्रकार के लोगों से हमें इस समाज में, सोसायटी में मिलना-जुलना होता है, संबंध होता है। एक पक्ष है मित्रवर्ग। कुछ लोग हमारे मित्र होते हैं। राजनीति में ऐसा कहा जाता है कि जो सत्ता में होता है, जो राजा होता है उसके कोई मित्र नहीं होते, उसके सब शत्रु होते हैं। राजनीति में कोई किसीका मित्र नहीं होता, सब शत्रु होते हैं, लेकिन लगते हैं मित्र जैसे! राजा माने कि ये मित्र है, लेकिन सब वोच करते हैं! ऐसा राजनीति में माना गया है।

बुद्धपुरुष का भी कोई मित्र नहीं होता। आप बुद्ध का कोई मित्र नहीं खोज पाओगे। भगवान महावीर स्वामी का कोई मित्र नहीं। या तो सेवक हो सकता है, सहायक हो सकता है, लेकिन जिगरी मित्र की बात आये तो आपको कोई मित्र नहीं दिखेगा। ऊलटा ये है, बुद्धपुरुष सबके मित्र होते हैं। ये किसी का वैरी नहीं हो सकता। क्योंकि बुद्धता जानती है कि मित्र में भी कहीं न कहीं वैरी छिपा है। मनोविज्ञान कहता है कि वैरवृत्ति की चेतना दब जाती है और मित्रता की चेतना उपर आती है, तो हमें लगता है कि ये मेरा मित्र है। प्रतीक्षा करो, उपरवाली चेतना थोड़ी कम होते ही नीचेवाली चेतना उपर आती है! आपने कभी अपने जीवन के बारे में सोचा है कि हमारे हृदय में किसी के प्रति इतना मैत्रीभाव था, अचानक वैरभाव क्यों प्रकटा? अचानक वैर का जन्म नहीं हुआ, ये दबी हुई चेतना थी। अच्छा है दबी थी, मौका आते प्रकट हो जाती है। हमें ये परख होनी चाहिए कि मित्र चेतना की मात्रा पर आधारित रहते हैं।

बुद्धपुरुष कुछ विशेष होते हैं। जैसे कि 'मानस' में भगवान राम, भरतलालजी, कागभुशुंडिजी, जनक महोदय, भगवती जानकीजी। मित्रता समान व्यसन, समान सख्य पर होती है। दो व्यक्ति का समान व्यसन हो तो वो जल्दी मित्र बन जाता है। समदु:खी मित्र बन जाते हैं। दु:ख-पीड़ा ये भी व्यसन है। एक भगवतप्रेमी को प्रभु के प्रेम की पीड़ा है और दूसरा कोई उसको मिल जाय उसको भी प्रेम की पीड़ा है, तो दोनों में जम जाती है; दोनों की संगति बैठती है; दोनों की धड़कन एक-सी हो जाती है।

बुद्ध 'प्रेम' शब्द का प्रयोग नहीं करते, वो 'करुणा' शब्द का प्रयोग करते थे। तो क्या बुद्ध में प्रेम नहीं था? विश्ववंद्य गांधीबापू भी सत्य और अहिंसा की ज्यादा चर्चा करते। वहां भी 'प्रेम' शब्द नहीं है ऐसा नहीं, लेकिन 'प्रेम' शब्द का इस्तेमाल कम है। भगवान महावीर ने अहिंसा पर ज्यादा बल दिया। और भगवान क्रिष्न को हम देखते हैं तो उसने सत्य और अहिंसा आदि को गौण बनाये रखा है, उसने केवल प्रेम पर ही बल दिया है। महामुनि विनोबाजी ने यद्यपि प्रेम को ही ज्यादा महत्त्व दिया है। और व्यासपीठ इस निचोड़ पर है, जहां तक मेरी निजी बात है तब सत्य, प्रेम, करुणा की त्रिवेणी लिए बात होती रहती है।

जिन लोगों ने प्रेम की कम चर्चा की है इसका मतलब मेरे भाई-बहन, ये न समझे कि वे प्रेमी नहीं थे। बुद्ध की एक घटना सुनने से मर्म खुलेगा। बारह साल की कठिन तपस्या के बाद जब बुद्धत्व पुष्पवर्षा कर रहा था, बोधी को वो प्राप्त कर गये। फिर वो अपने जन्मस्थान में अपनी नगरी में आते हैं। कहा गया है, सबसे पहले वो अपनी पत्नी को मिलने जाते हैं। पहली बार शायद बुद्ध अपने प्रिय साथी, जो निरंतर उनके साथ रहा आनंद, वो आनंद से कहते हैं कि 'आज मैं अकेला यशोधरा को मिलूंगा, तू साथ मत आना।'

एक क्षण के लिए आनंद को लगता है कि बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद यशोधरा का मिलन और उससे गोपनीय बात करनी ये सब क्या? कहा, 'भगवंत मेरा व्रत है। मैं सदा आपके संग रहूं।' बुद्ध कहते हैं, 'तुम्हें अभी बुद्धता नहीं हांसिल हुई आनंद, तुम्हें बुद्धता प्राप्त होगी जब मैं निर्वाण जाउंगा उसके पहले एक दिन; और उसके बाद मैं नहीं होउंगा। तू अभी कच्चा है, ये मर्म नहीं समझ पायेगा।' जिद करता है। आखिर में बुद्ध आदेश के रूप में कहते हैं कि नहीं आ सकता। क्या रहस्य है अकेले

में मिलने का? बुद्ध जाते हैं। लेकिन एक बार फिर पीछे देखकर आनंद का समाधान करते हैं, 'आनंद, बारह साल से यशोधरा ने अपना विद्रोह दबाये रखा है, वह मुझ पर कुपित है। और मैं उसे मिलने जाउं तो खबर नहीं वो क्या बोलेगी! तू सुन नहीं पायेगा। क्योंकि तू कच्चा है, तू गलती से गुस्सा कर बैठता। ओर बारह साल से जो उनके हृदय में पीड़ा भरी है उसका निकल जाना आवश्यक है। मैं मौका देना चाहता हूं।' तब बुद्ध बोले, 'मैं यशोधरा से प्रेम करता हूं।' निरंतर याद करना भी प्रेम है और सालों तक छिप जाना भी प्रेम है। प्रेम का गणित संसार की किताबों से नहीं जाना जाता। किसी बुद्ध व्यक्तियों के जीवन से उनके मर्म का उद्घाटन होता है।

पक्की मैत्री होगी, लेकिन जानने में भूल न करना; अंदर कई दुश्मनी छिपी होगी, मौका खोजती होगी! पूरे नहीं पहुंचे सद्गुरु के शिष्य उनके शिष्य नहीं होते। उनके अंदर भी कहीं न कहीं विद्रोह छुपा रहता है। बाप-बेटे में यद्यपि वात्सल्य है, अवश्य। और ये सही में है तो बाप-बेटे में क्यों मतभेद होते हैं? क्यों दलीलें होती है? हमने किसने बचाया, उसका स्मरण बार-बार करो। मेरे पास एक अनुरूप शे'र है। सीधी-सादी है चार पंक्ति, लेकिन मर्म से धूली हुई है।

किसी फ़कीर का दस्ते दुआ चलाता है।

हमारा जीवन कौन चलाता है? किसी फकीर का दस्ते दुआ, किसी साधु के उपर उठे हाथ हमारे जीवन को संचालित करता है। बिसरे नहीं। मैं और आप बिसरे तो संसारी, कभी न बिसरे तो रोज संन्यासी। संसार भूलने से संन्यासी नहीं हुआ जाता। किसी की करुणा की निरंतर स्मृति रखने से पेन्ट में भी संन्यासी हुआ जाता है।

किसी फकीर का दस्ते दुआ चलाता है।
हकुमतें नहीं चलाती, खुदा चलाता है।

तुझे खबर ही नहीं, मेले में घूमनेवाले,
तेरी दुकान कोई दूसरा चलाता है।

गंगासती का एक शब्द है वचन का मर्म जानना। तुलसी को भी होता होगा कि मैंने जो लिख दिया उसका मर्म अभी मुझे भी नहीं पता! क्योंकि लिखा उसने नहीं, लिखाया गया। और तुलसी तो बहुत प्यारे सद्गुरु है, क्योंकि उसने पहले से कुबूल कर लिया था। हमारी तकलीफ़ है, हम पहले से कबूल करते हैं कि हम मर्मज्ञ है! और तुलसी ने पहले से कबूल कर लिया, मान रखा कि मुझे मेरी 'मानस' रचना का एक भी अंग सूझता नहीं, मैं क्या करूं? ये तुलसी का करारनामा है -

सूझ न एकउ अंग उपाउ।
मन मति रंक मनोरथ राउ।।

अंग मेरे हाथ में नहीं आ रहा है, क्योंकि मेरी मति कभी रंक है और मेरे मनोरथ सम्राट के हैं! मैं कितना छोटा हूं!

मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी।

ये बुद्धपुरुष अपनी बुद्धि के लिए 'नीच' शब्द का प्रयोग करते हैं! तुलसी अपने लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं। आदमी आत्मनिवेदन कर सकता है। मेरी रुचि बहुत ऊंची है। मैं बड़ा कुछ पकड़ने जा रहा हूं और औकात नहीं है! बिलकुल धरा पर ये आदमी है। तभी इसका शास्त्र घट-घट में पहुंचा है।

माहे रमजान वक्त से पहले नहीं आता,
ये घर की हालत देखकर बच्चों ने रोझा रख लिया।

समाज की स्थिति है! आज भी समाज में, एडवान्स जगत में, भूमंडल में कई बच्चें भूखे सोते हैं! ये समाज का चित्र है। अभी भी करीब-करीब कितने करोड़ गुलाम बसते हैं पृथ्वी पर! आदमी को खरीदा जाता है! इस गुलामी की प्रथा हमारे यहां थी। आज एडवान्स दुनिया में इतने लोगों को खरीदे जा रहे हैं और नाम दिया जाता है, हम सब तनख्वाह देते हैं, हम उसको नौकरी में रखते हैं! बात गलत है। नामदार पौल, विश्व साम्राज्य के बड़े बिसप, मुस्लिम जगत से बहुत मौलाना, मेरे पास भी दावत आई कि बापू इसमें आप? मैंने कहा, मैं तो इस विचार का आदमी हूं। मानवधर्म होना चाहिए। अब मानव न बिके, इन्सान न खरीदा जाय। और दुनिया के सभी मज़हबें सत्य, प्रेम और करुणा का ग्रंथिमुक्त होकर आदर करने लगे, तब ये दूषण समाप्त होगा।

सत्य, प्रेम, करुणा को जितनी मात्रा में अपनाया जाय। इमानदारी से उसकी राह पर मैं और आप चलना सीखें। ये कथा क्यों है? दिल को भरने का एक प्रयोग है। बड़े-बड़े धर्मपुरुष जो मानवता को केन्द्र में रखते हुए अपने मज़हब, अपनी नियम, अपने बंदगी को सब ग्रंथियां तोड़कर इस बात की चिंता कर रहे हैं, एक बहुत बड़ा अभियान होने जा रहा है। मैं उस पर हस्ताक्षर करनेवाला हूं। ये मेरे विचारों से मिलती हुई बात है। सोचो, दिल को पहले भर लो। पैसा कमाने के लिए बड़ी उम्र पड़ी है। दिल भरने के चंद दिन होते हैं। मैं तो चाहूं तुम्हारा दिल भर जाय, तुम्हारी आंखें भर जाय, मेरा बोलना सफल हो जाय। कोई सूरज तुम्हारे आंख के आंसू को सुखा न पाये। रामकथा ये धार्मिक सम्मेलन नहीं है, ये प्रेमयज्ञ है।

सो गये गरीब के बच्चें ये सुनकर,
सुना है ख्वाबों में फरिश्तें आते हैं और रोटियां बांटते हैं।

मीर का एक शे'र है -

शिरहाने मीर के आहिस्ते बोलो,
अभी तो सोया है ये बच्चा रोते-रोते।

कोई हमारे पीछे है, ये चलाता है, उसका स्मरण रखें। बाप, इस जीवन के परम रहस्य, जो जीव का रहस्य, जो जीवन का रहस्य, जो परमात्मा का रहस्य ये बहुत बड़ा मर्म है। उसको खोलने की विधा तुलसी बता रहे हैं। हम अपनेआप को बहुत मूल स्वरूप में महसूस करें।

बुद्ध यशोधरा को मौका देते हैं। 'बारह साल का उनमें जो भरा है वो खुलेगा, आनंद, तू सह नहीं पायेगा।' आनंद समझ जाता है। बुद्ध जाते हैं और यशोधरा बहुत बोलती है, 'आपका प्रेम दिखावा था!' हल्की-सी मुस्कुराहट कर बुद्ध ने कहा, 'मेरा प्रेम था, अभी भी है। इसलिए बारह साल के बाद आया हूं।'

प्रेम बोली में व्यक्त नहीं होता। लेकिन दिशायें भिन्न है। मेरे भाई-बहन, चैतन्य में छिपी हुई बात के मर्म को समझना बहुत कठिन है। इसलिए बुद्धपुरुषों के मित्र नहीं पाये जाते। बुद्ध सबका मित्र होता है। परम तत्त्व सबका मित्र है। सूर्य का एक नाम मित्र है, इसलिए सूर्य सबका है। हमारी अगल-बगल में हम जिसको मित्र मानते हैं, मैत्री उपर से कहीं चेतना की अज्ञात स्थिति में वैर भी दबा हुआ है! और दुश्मनों को देखकर निर्णय मत करना, क्योंकि उसके अज्ञात चित्त में कभी प्रेम चलता है। जगत ब्रह्मा का प्रपंच है और ब्रह्मा ये तुलसी के मत प्रमाण 'विधि प्रपंच गुन-अवगुन साना।' ये विधि गुन-अवगुन से मिश्रित है। सुना है सो टचके सोने का अलंकार

नहीं बनता। इसलिए कुछ ताम्र मिलाना पड़ता है। जगत भी मिलावट है गुन-अवगुन की, पाप-पुण्य की। तो, हमें जगत में जहां जी रहे हैं वहां मरम जानना चाहिए शास्त्र से कि मित्र क्या है?

दूसरा मर्म जानना चाहिए, दुश्मन क्या है? और तीसरा मर्म जानना चाहिए, दोनों के बीच में एक ऐसा पड़ाव है, जो मैत्री से भी दूर है, वैरी से भी दूर है। कोई मध्यस्थ है, कोई बीच में है।

गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।

केवट गुहराज, लोगों का समूह, उसमें गैरसमज़ पैदा होती है कि सेना लेकर कैकेयी का बेटा आ रहा है, तो उनके मन में दुर्भाव तो नहीं होगा? गुहराज आवेश में आता है, लेकिन थोड़ी सावधानी भी उसने बर्ती। अपने समाज को सावधान करके उसने कहा, 'आप सब इकठ्ठे होकर गंगा के घाट को घेर लो। सब नौका रोक लो और फिर मैं भरत के पास जाउंगा। मैं उसका मरम जान लूंगा। उनका रहस्य, उनकी अंत:करण की प्रवृत्ति जान लूंगा। कहीं जल्दी में हम गलती न कर ले।'

मेरे भाई-बहन, जल्दी में निर्णय न लेना। ज्यादा नहीं तो अमल करने से पहले एक घंटा रूक जाना। एक घंटा महत्त्व का काम करेगा। आखिरी निर्णय में बल मिलेगा। तो, गुहराज ने अपने को संभाला और कहा कि, 'जाओ घाट रोक लो, मैं भरत को अकेले मिलूंगा।' और फिर ये मर्मवाली बात -

बूझि मित्र अरि मध्यगति तस तब करिहउँ आई।।

मित्र, अरि मानी शत्रु, मध्यगति मानी उदासीन, दोनों से एक समान डिस्टन्स। तो, गुहराज कहता है, 'तुम घाट रोक लो और भरत से बात कर लूं कि मैत्रीभाव है कि उदासीन भाव है कि शत्रुभाव है? ये तीनों का मैं मर्म खोज लूं, उसके बाद हम आगे का कदम उठाये।' आवेश में करने से कहीं चूक हो सकती है। अब मर्म कैसे जाने? बहुत बड़ा प्रयोग है मर्म जानने का। आदमी कैसा है? वो भोजन क्या करता है उस पर से उसका मर्म जाना जाता है। ये फलाहारी है कि अन्नआहारी है कि मांसाहारी, इससे मित्र, अरि, उदासीन वृत्ति का मर्म जानने की कोशिश की है। परिचय दूसरा कि तुम्हारे कमरे में तुम्हारे कैसे चित्रों में रुचि है, वो हमारे भीतरी मर्म को उजागर करता है। तुम्हारी कंपनी, तुम्हारे मित्र, किसके साथ ज्यादा तुम्हारा मन लगता है, इससे तुम्हारे भीतरी परिचय का मर्म खुलता है। कुछ ऐसे प्रयोग हम ले सकते हैं कि हम जाने। वनमें तो चित्र साथ नहीं होता, तो गुहराज भरतजी का मर्म कैसे जाने? संग तो सेना है, लेकिन इसमें भी कहीं धोखा हो सकता है। तीसरा प्रयोग 'मानस'कार ने करवाया कि अपने साथियों को गुहने कहा, तीन प्रकार की भेंट लेकर जाओ और भरत के चरणों में रखे, इनमें से भरत कौन-सी भेंट कबूल करे इससे पता लगेगा कि उसके अंदर का मर्म क्या है? मैत्री, दुश्मनी कि उदासीनता?

दो-चार टोपले में कंदमूल लिया। 'रामचरित मानस' में लिखा है, खग, मृग भी ले गये। कुछ पक्षी और कुछ पशु उनको भी ले गये। और तीसरी बात आई। विशेष प्रकार की मछलियां टोपली में भरकर ले गये। तो, भरत के सामने तीन प्रकार की सामग्री भेंट के रूप में रखी गई। कौन-सी भेंट भरत कबूल करे इससे भरत का अंतरंग समझ में आ सके। फल-फूल कुबूल करे तो उदासीन है। पशु-पक्षी कबूल करे तो भरतजी पशु-पक्षी तक मैत्री रखना चाहता है। और यदि मछली के टोपले को पसंद करे तो समझना वैरगति है। हमारे शास्त्रों ने कहा है, आदमी जैसा अन्न खाता है, ऐसा मन बनता है। ये बिलकुल सच्ची बात है। सात्त्विक आहार से सत्त्वशुद्धि होती है ये नियम है। ठाकोरजी ने धरी शकाय एवुं खावुं। भरतजी ने मछलियां को दूर कर दी। खगमृग को छोड़ दिया और कंदमूल को सेवकों को लेने को कहा। गुह की आंख में आंसू भर गया कि बिना मर्म जाने मैं बहुत बड़ी भूल कर देता! परमात्मा ने मुझे बचा लिया। फिर भरतजी का स्वागत किया। तो, मर्म जानने के लिए ये भी एक योजना 'मानस' में आई।

भरतलालजी चित्रकूट गये। और वहां सब मिले। जानकीजी अपनी सास लोगों को मिली। फिर एक पंक्ति आती है, जानकीजी ने रात्रि के समय अपनी तीनों सास की सेवा के लिए अपना तीन रूप लिया! कैकेयी को लग रहा कि जानकी को मेरे कारण वन में आना पड़ा और धन्य है जनकनंदिनी को कि ऐसी दु:ख देनेवाली माँ की चरणसेवा मेरी पुत्रवधू कर रही है। दूसरे रूप में माँ सुमित्रा के चरण की सेवा करती है और तीसरे रूप में माँ कौशल्या की सेवा में हाज़िर है।

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ।
माया सब सिय माया माहूँ।

भगवान राम के अतिरिक्त इस मर्म को कोई

नहीं जान पाया! गोस्वामीजी ने एक छबि बनाई है। हमारे सामने रखी है कि कैसे चलते हैं? आगे रामजी चलते हैं, पीछे लक्ष्मणजी, बीच में जानकीजी। राम ब्रह्म है, लक्ष्मण जीव है, जानकीजी परम्बा ये माया है। माया ब्रह्म के पीछे चलती है। माया ब्रह्म को ओवरटेक नहीं करती। ये माया का लक्षण है अथवा ब्रह्म का ब्रह्मत्व है। और हम जैसे जीव माया के पीछे चलते हैं। बिलग-बिलग संदर्भ में 'मानस' के 'मर्म' का अर्थ निकाला जाता है।

प्रभु का प्राकट्य हुआ। ऐसे ही माँ कैकेयी ने पुत्र को जन्म दिया। माँ सुमित्रा ने भी दो-पुत्रों को जन्म दिया। अयोध्या में बड़ा उत्सव चल रहा है। कोई मर्म नहीं जान पाया! चारों भाई बड़े होने लगे। बाबा वशिष्ठजी आये। प्रार्थना की गई, 'आपकी अंत:करण की प्रवृत्ति के अनुसार हे मुनिराज, हमारे पुत्र के नामकरण करो।' वशिष्ठजी ने कहा, 'जो आनंद का सिंधु सुखराशि है, समग्र जगत में व्याप्त है, जिसका नाम लेने से जीव को विश्राम की प्राप्ति होगी, इसलिए ये बालक का नाम राम रखता हूं, ये महामंत्र है।' राम के समान मिलता-जुलता कैकेयीनंदन का नामकरण करते कहा, 'विश्व का भरण-पोषण करेगा, इसलिए मैं उनका नाम भरत रखता हूं। जिसके नाम से वैर खत्म होगा, वैरी नहीं; शत्रुता का नाश होगा, शत्रु के नाश की बात नहीं, इसलिए इसका नाम शत्रुघ्न रखता हूं। समग्र जगत का आधार, सबका प्रिय, सब सद्लक्षणों के भंडार, ऐसे सुमित्रानंदन का नाम मैं लक्ष्मण रखता हूं।' वशिष्ठजी ने कहा, 'ये तुम्हारे चारों पुत्र वेदों के सूत्र है।' गुरु ने नामकरण किया, बहुत बड़ा उत्सव हुआ।

चारों भाईयों का यज्ञोपवित हुआ। गुरु के आश्रम में विद्या प्राप्त की और विद्या प्राप्त करके लौटे। विश्वामित्र ने आकर राम-लक्ष्मण की मांग की। वशिष्ठजी के कहने से दशरथजी ने दोनों पुत्र सौंप दिये। ताड़का का उद्धार हुआ। विश्वामित्र के यज्ञ की राम-लक्ष्मण ने रक्षा की। दूसरे दिन विश्वामित्र के कहने पर जनकपुर की यात्रा पर चले। रास्ते में अहल्या का उद्धार किया। जनकपुर आये। जनकराजा ने स्वागत किया। परिचय प्राप्त किया और मिथिला के 'सुंदरसदन' में निवास किया। सबने भोजन करके विश्राम किया।

> बुद्धपुरुष का कोई मित्र नहीं होता। आप बुद्ध का कोई मित्र नहीं खोज पाओगे। भगवान महावीर स्वामी का कोई मित्र नहीं। या तो सेवक हो सकता है, सहायक हो सकता है, लेकिन जिगरी मित्र की बात आये तो आपको कोई मित्र नहीं दिखेगा। ऊलटा ये है, बुद्धपुरुष सबके मित्र होते हैं। ये किसी का वैरी नहीं हो सकता। क्योंकि बुद्धता जानती है कि मित्र में भी कहीं न कहीं वैरी छिपा है।

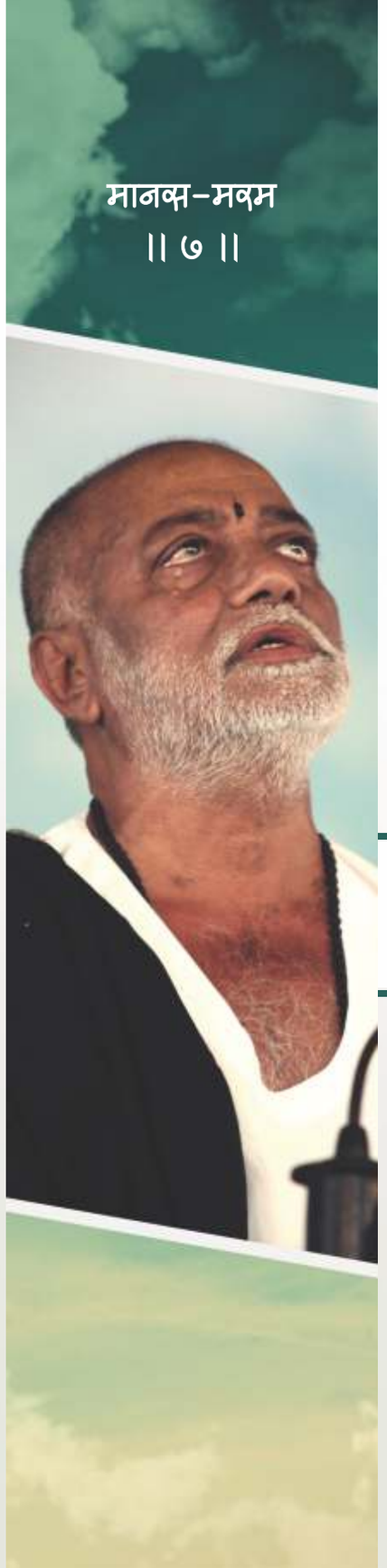

आज बहुत प्रश्न है, लेकिन एक प्रश्न की मैं स्पष्टता करना चाहूंगा। एक युवक ने पूछा है कि ''बापू, ओशो रोज एक प्रवचन करते थे किसी सब्जेक्ट की शृंखला पर और एक दिन विषय पर बोलते थे। दूसरे दिन इस विषय के अनुरूप जो जिज्ञासायें श्रोता से आती थी उसके जवाब में दूसरा दिन चलता था। फिर तीसरा दिन सब्जेक्ट, फिर चौथा दिन जवाब; आप ऐसा क्यों नहीं करते?''

मैं यहां कोई करे ऐसा करने के लिए नहीं आया हूं, ये पहली स्पष्टता। मैं यद्यपि सत्य कबूल करता हूं, जहां से मिले, लेकिन ये मेरी रीत बड़ी पुरानी है। मेरे साथ संगीत नहीं था, मैं अकेला बोलता था, देहातों में बोलता था, तब भी कोई देहाती मुझे चिठ्ठी लिखकर देता था। तब भी मैं मेरी गुरुकृपा से मेरी अक्ल के मुताबिक उसका जवाब देने की चेष्टा करता था। यद्यपि ओशो के विचार मेरी आत्मा कबूल करे इतने, बाकी ओशो को

भजनानंदी वैराग का मरम खोल सकता है

भी नाराज न होना चाहिए। तो, मैं कोई करे ऐसा करने यहां नहीं आया हूं। मैं ये भी नहीं चाहता कि मैं करूं ऐसा आप करो। आप अपनी निजता बरकरार रखे। आप अपनेआप में है ऐसे रहे। शब्द तो केवल आपको प्रोत्साहित करते हैं, सचेत करते हैं अथवा तो उद्घाटन कर देता है।

कोई दायन, कोई नर्स अथवा तो प्रसूति करानेवाली कोई डाक्टर किसी औरत के पेट में गर्भ नहीं डालती। गर्भ ओलरेडी उसके पेट में है, नव महिने हो चूके है और इसका कर्तव्य है, उसको उद्घाटित कर दिया जाय। सोक्रेटीस यही कहता था कि मैं किसीको कुछ देता नहीं, ओलरेडी उसमें सत्य है, प्रेम है, करुणा है। मेरा कार्य केवल उसको उद्घाटित करना है।

हां, शुभ जरूर ले लें, अवश्य। और मैं किसीकी बात कहूंगा तो उसके नाम के साथ और बड़े अहोभाव के साथ कहूंगा। जिससे लिया उसका नाम लूंगा। तो बाप, मैं सत् का स्वीकारक हूं। और ये वैदिक परंपरा है, हमें दशों दिशाओं से शुभ विचार प्राप्त हो। तो, पहले ये स्पष्टता कि यहां कोई दूसरे की तरह करने की चेष्टा नहीं है।

एक प्रश्न है, ''बापू, पूज्यपाद गोस्वामी महाराज ने मन को केन्द्र में रखते हुए 'मानस' की रचना की। 'भगवद्गीता' में क्रिष्न ने मन पर बहुत समझाने की चेष्टा की। फिर भी मन अस्थिर होता है, उसका मर्म क्या? और मन स्थिर हो जाय उसका मर्म क्या? अगाध और सहज प्रयत्न करने पर भी मन में विक्षेप होता ही रहता है, उसके बारे में कुछ कहे।''

बाप, 'मानस' के आधार पर कहूं तो मन अस्थिर होने के कारण तो हम स्वयं पकड़ सकते हैं। मन का अस्थिर होना उसका कारण हम स्वयं है। तो, आप थोड़ा आंतर्दर्शन विशेष करे तो आप अपने कारण खोज सकते, क्योंकि मन के अस्थिर होने के कारण सबके मेरी समझ में भिन्न हो सकते हैं। किसी का कोई सांसारिक बोझ के कारण मन अस्थिर है। किसी के मन की अस्थिरता का कारण कोई बीमारी, रोग है। किसी के मन की अस्थिरता का कारण दूसरों की पीड़ा नहीं सहन हो रही है, यही हो सकता है। ये स्वागत योग्य अस्थिरता है। हमारे मन के अस्थिर होने का एक कारण हमारे क्षेत्र में हम से कोई ज्यादा उपर उठ गया! जिस क्षेत्र में आप है, उस क्षेत्र में कोई आप से ज्यादा तरक्की करे, तो मन अस्थिर होने लगता है! यही भी एक कारण हो सकता है। मेरे मन की अस्थिरता के कारण मेरे हो सकते हैं, आपके आपके हो सकते हैं। पहले कारण खोजो। क्योंकि हमारे यहां कार्य-कारण का सिद्धांत कहता है, कार्य बाद में होता है, पहले कारण होता है। कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता। मैं मुंबई आया इसका कारण है रामकथा। आप भवन के कम्पाउंड में आये उसका कारण है रामकथा। मन की अस्थिरता के सबके अपने-अपने कारण होते हैं। खोजो और सत्संग से प्राप्त विवेक से इन कारणों से बचने की कोशिश करो। क्यों हम जलन रखें? क्यों हम इर्ष्या करें?

दूसरा, मन स्थिर होने का मर्म का उपाय तुलसी ने स्पष्ट कर दिया -

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।

परस कि होइ बिहिन समीरा।।

विज्ञान का सिद्धांत है, हवा न हो तो स्पेस में कोई किसी से स्पर्श नहीं कर सकता। आदमी स्पेस में उड़ता है। हमारा और आपका विश्व में किसी से स्पर्श करना हवा के बिना संभव नहीं है। इसलिए रमण महर्षि कहते हैं कि आप बिलकुल शून्य हो जाओ, खाली हो जाओ तो राग-द्वेष का स्पर्श नितांत समाप्त हो जाएगा। जब हम खाली हो जाते हैं तो सभी विकारों से हमारा छूना अथवा तो उसके द्वारा हम पकड़ में आये, ये सब प्रपंच खत्म हो जाते हैं। क्योंकि हम शून्य हो गये। हमारा द्वैत खत्म हुआ। तो, बिना हवा कोई किसीसे छू नहीं सकता ये वैज्ञानिक सिद्धांत है, उसी तरह एक भ्रांति गोस्वामीजी ने तोड़ी। हम कहते हैं कि मन स्थिर हो जाय तो सुखी हो जाय, तुलसी ऊलटी गंगा बहाते हैं! कहते हैं, तुम अपने निजसुख को प्राप्त करो, मन स्थिर अपनेआप हो जाएगा। मुझे बड़ा सरल पड़ता है ये सूत्र। तुलसी ने कहा इसलिए नहीं। तुलसी ने कहा उसका मुझे अहोभाव है, लेकिन वैश्विक सूत्र है। हम सोचते हैं कि बस, मन स्थिर हो जाय तो सब शांति। तुलसी कहते हैं, पहले तू तेरा सुख प्राप्त कर ले, तू सुखी है, तेरा स्वभाव सुखी है। उधार सुख नहीं, निजसुख, 'स्वान्तः सुखाय।'

'मानस'कार का मंतव्य, अपने निजसुख के बिना यहां किसीका मन स्थिर नहीं होगा। एकनाथजी महाराज, उसके बारे में लिखा गया है कि एक बार एक औरत उसके पास आई। बाबा ने स्वागत किया, 'आपका परिचय?' बोली, 'मैं शान्ति हूं, मैं सुख-चैन से भरी शांति हूं। मैं सब जगह जाना चाहती हूं, लेकिन कहीं टिक नहीं पाती, कहीं रहने का मुझे ठिकाना बताओ। मेरा कोई स्थान निश्चित नहीं होता। कहीं जाती हूं तो वहां उहापोह है! कहीं जाती हूं तो भूखे बच्चे रो रहे हैं! मुझे वहां से निकलना पड़ता है। मैं कहां जाउं?' कहते हैं, संत ने ज्ञानेश्वर का घर बताया। घटना हुई न हुई ये सब तर्क के जाल में मत जाना। सिद्धांत खोजो।

क्यों कहते हैं हमारे यहां कि जहां संत होता है, वहां शांति होती है। शांति का ठिकाना साधु है। 'शांति पमाडे तेने संत कहीए।' हम किसी महापुरुष के पास जाते हैं तो हमें अच्छा क्यों लगता है? क्योंकि वहां शांति निवास करती है। और कोई साधु चला जाता है तो क्यों अच्छा नहीं लगता? क्यों पीड़ होती है? पाना क्या है साधु से? साधु से पाना है शांति। उसके निकट शांति होती है, तो हम क्यों अशांत है? तो, मन स्थिर करना है तो उसका राज़ तुलसीने बताया -

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा।

परस कि होइ बिहिन समीरा।।

कारण खोजने से बेटर है, हमारा सुख किसमें है उसकी तलाश की जाय। हम सुखस्वरूप है, हम आनंदस्वरूप है, ये न भूलें। सहज सुख के हम मालिक है।

एक प्रश्न है, 'क्रिष्नप्रेम का मर्म क्या है?' ये भी समझाना मुश्किल है। प्रेम का मर्म प्रेमी जाने। 'घायल की गत घायल जाने।' खग की भाषा खग जाने। 'रामचरित मानस' में गोस्वामीजी एक पंक्ति लिखते हैं -

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।

जानत प्रिया एकु मनु मोरा।

'महाभारत' में कर्ण एक बार बोला है, 'मैं ओर कुछ नहीं जानता, लेकिन क्रिष्न और अर्जुन के प्रेम का मर्म मैं जानता हूं।' अद्भुत वाक्य बोला! कर्ण धर्म का ज्ञाता है, ऐसा क्रिष्न का प्रमाणपत्र है। कर्ण वेद को जानता है, ऐसा क्रिष्न का प्रमाणपत्र 'महाभारत' में रेखांकित गया। क्रिष्न-कर्ण संवाद पढ़ने जैसा है। 'महाभारत' के सभी पात्र धर्म के मरम को जानते हैं। दुर्योधन से शरू करूं, 'जानामि धर्मं।' ये दुर्योधन के खुद के शब्द है। मैं धर्म जानता हूं, लेकिन मेरी मुश्किल ये है, मैं धर्म का अनुशरण नहीं कर पाता। मैं अधर्म के मर्म को जानता हूं, लेकिन अधर्म को छोड़ नहीं सकता हूं। यहां कोई खराब नहीं। हमें दर्पण दिखाने के लिए इन लोगों ने सब डायलोग निर्मित किये। जिस काल में पूर्णावतार परब्रह्म भगवान श्रीकृष्ण की उपस्थिति होगी और दुर्योधन को जब संधि का प्रस्ताव लेकर जाते हैं तब आमने-सामने निगाहें अंदर मिला के बात की जाती है, फिर भी दुर्योधन को कोई असर न हुई! हुई होगी, हुए बिना रहे ना, लेकिन बेचारा कहता है, खरे समय मैं धर्म का आचरण नहीं कर पाता! धर्मराज उसको कायम सुयोधन कहते थे। तो बाप, दीक्षित दनकौरी सा'ब का शेर -

शायरी तो सिर्फ़ एक बहाना है,
असली मकसद तो तुझे रिझाना है।

किस चीज़ से आपका मन ज्यादा प्रफुल्लित हो इसलिए ये आयोजन थोड़ा हास्य, थोड़ा संगीत, थोड़ा गीत, कभी गाना। आपकी आत्मा के कषाय को दूर करके आपकी प्रसन्नता को मुक्त करेगा, जो बंदी है। शायरी सिर्फ बहाना है। कई लोग कथा की आलोचना करेंगे वो अपनी जगह बराबर। कथा फ़कीर नहीं बनाती, कथा अंदर का अमीर पैदा करती है। अमीरी को उजागर करती है। कथा नाचना भूल गये उसको नचाना सिखाती है, गाना भूल गये उसको गाना सिखाती है, प्रसन्न बना देती है और रोना भूल गये है उसको रोना सिखाती है। ये धर्मसंमेलन नहीं है, ये प्रेमयज्ञ है। तो बाप, नज़रियां ठीक नहीं तो हम आलोचना करते हैं! इसमें किसी का दोष नहीं, दृष्टिभेद है।

हमारे यहां भ्रांति है कि 'महाभारत' घर में न रखा जाय। 'महाभारत' रखने से घर में, परिवार में कज़िया होता है! धर्म स्वयं भ्रांति पैदा कर सकता है, श्रोता की विवेकमय श्रवण और दृष्टि न हो तो। मेरे श्रोता को मेरी प्रार्थना, बहुत विवेक से सुनिएगा। 'महाभारत' रखो, पढ़ो, इससे घर में महाभारत होगा तो शांत हो जाएगा! व्यास बहुत विशाल है, संकीर्ण नहीं है। 'नमोस्तुते व्यास विशाल बुद्धे।' 'महाभारत' अद्‌भुत है। 'रामायण' के साथ पीने से और मज़ा आएगा।

''बापू, प्रेम और करुणा के बीच क्या सूक्ष्म अंतर है? कुछ कहे।'' प्रेम और करुणा सापेक्ष है, ऐसा कहना चाहते हैं। बिना प्रेम करुणा संभव नहीं और बिना करुणा प्रेम संभव नहीं। आप जो कहते हैं ठीक है, लेकिन दोनों सत्य होना चाहिए। इसलिए व्यासपीठ का जो त्रिकोण है, सत्य, प्रेम, करुणा। करुणा सच्ची नहीं

और प्रेम सच्चा नहीं तो दोनों विफल है। दोनों जुगलबंदी तो कामकी जो सच्चा प्रेम हो, सच्ची करुणा हो। कभी-कभी सोचो, हमारी मुस्कराहट सच्ची है? बिलकुल औपचारिक है! मुस्कुराना पड़ता है। हमारे आंसू भी कभी-कभी मगर के होते हैं! सही न भी हो। करुणा या प्रेम ये अद्‌भुत है, लेकिन सत्य होना चाहिए। इसलिए त्रिकोण को आप किसी भी रूप में ले सकते हो। सत्य, प्रेम, करुणा अध्यात्म-त्रिकोण है।

'अरण्यकांड' में जो मर्म की बातें है इससे थोड़ा आगे बढ़ें।

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना।।

प्रसंग की पृष्ठभूमि है, लक्ष्मणजी कंदमूल, फल लेने के लिए पंचवटी में बाहर गये है। और भगवान और सीयाजु दोनों अकेले बैठे हैं। और रामजी ने सीताजी से कहा, देवी, 'तुम्ह पावक महुं करहु निवासा।' आप अग्नि में निवास करो। जब तक मैं आसुरीवृत्ति का विनाश न कर दूं, साधुओं का परित्राण न कर दूं, धर्म को पुनः उसकी मूल जगह पर स्थापित न कर दूं, तब तक आप अग्नि में समा जाओ। लक्ष्मणजी रहस्य जान न पाये। राम की रचना को लक्ष्मण जो जाग्रत पुरुष है, परम वैरागी है, फिर भी ये मूल जानकी है कि प्रतिबिंबित जानकी है ये निर्णय नहीं कर पाये! लगा कि वो ही है! फिर भगवान ने ललित नरलीला करते हुए, लक्ष्मणजी को जानकी की सुरक्षा में रखते हुए कहा कि, 'तुम जानकी का खयाल रखना, यहां राक्षस लोग घूमते रहते हैं। और मैं अभी आया।' और स्वर्ण मृग के पीछे, मारीच के पीछे भगवान दौड़ते हैं। और वो मारीच बहुत दूर ले गया। आखिर में जितना डिस्टन्स जरूरी था इतनी दूरी पर जा कर प्रभु ने तीर मारा और मारीच गिरता है और 'हे लक्ष्मण, हे लक्ष्मण' कहकर पुकारता है। और 'हे लखन, हे लखन', ये आवाज़ पंचवटी की कुटिया में टकराई! और जानकीजी ने आवाज़ सुनी और वो एकदम आसक्त हुई! एकदम बाहर आई, 'लक्ष्मणजी, मुझे लगता है, आपका भैया संकट में है, आप जल्दी जाईये। वो आपके नाम की पुकार कर रहे हैं। वो हिरन मारने गये, शायद राक्षसों ने षड्यंत्र रचा हो और घिर लिये गये हो।' ये ललित नरलीला है।

सीताजी को मारीच की आवाज़ में राम की आवाज़ सुनाई दी। कुछ कारण हो सकते हैं। एक तो मारीच मायावी है। शायद आवाज़ में एसी नकल की हो। ऐसी माया की हो कि राम बोल रहे हैं। मारीच की आवाज़ में रामकी आवाज़ सुनाई देना ये धोखा जो हुआ क्यों? जब हम मायावी होते हैं तब ठीक से आवाज़ नहीं पहचान पाते। जानकी आज मायावी रूप में है। सद्‌गुरु पुकार रहा है, परमात्मा की आवाज़ आ रही है, शास्त्र पुकारे जा रहे हैं, लेकिन हम उसकी आवाज़ नहीं पहचान पाते हैं, क्योंकि हम मायिक है, हम माया से लिप्त है। एक वर्तुल हमारी चारों ओर कवच के रूप में है, जो मूल ध्वनि को हमें नहीं समझने देता। एक कारण ये।

दूसरा, मारीच ने माया की हो ऐसा हो सकता है। तीसरी बात, 'रामबाण वाग्या होय ए जाणे।' 'मानस' का एक सूत्र है परमात्मा का जो दर्शन करता है, वो परमात्मा के स्वरूप को पा जाता है। राम का तीर लगते ही मारीच रामाकार हुआ, रामरूप हुआ। और जब रामरूप हुआ तो आवाज़ में भी राम की तासीर आ गई। इसलिए उनको राम की आवाज़ लगी। और लक्ष्मणजी ने कहा कि, 'मुझे आपकी सुरक्षा में नियुक्त किया है, मैं

नहीं जा सकता।' जानकीजी जरा ऐसा बोल गई कि लक्ष्मणजी जरा डोल गये कि अब मैं क्या करूं? वहां फिर 'मर्म' शब्द का प्रयोग आया है -

मरम बचन जब सीता बोला।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।

ये हकीकत थी प्रतिबिंब बोला। स्वयं भगवान रामजी की प्रेरणा से लक्ष्मण का मन डामाडौल हुआ। जानकी ने मर्म वचन में कोई व्यंग नहीं कहा। कोई ऐसी अरुचिकर बानी नहीं बोली गई वहां। लक्ष्मण पुत्रवत् है, जाग्रत है, सावधान है, शेषावतार है। अभी तक लक्ष्मणजी मर्म नहीं समझ पाये। तो, इतना सचेत, इतना जाग्रत महापुरुष भी राम की रचना के मर्म को नहीं समझ पाया। आज जानकी ने ही कह दिया, 'लखन भैया, आप नहीं जान पाये, लेकिन मैं प्रतिबिंब हूं।' ये मरम कह दिया।

आदमी लाख जाग्रत हो, आदमी लाख वैरागी और त्यागी हो, लेकिन जानकीरूपी भक्ति का मर्म समझ में न आये, तब तक जागरण थोड़ा कमज़ोर हो जाता है। भक्ति के बिना वैराग का मरम खुलेगा नहीं। जानकी बोले, जानकी मानी भक्ति बोले। भक्ति वैराग्यनो मरम खोलशे। भजनानंदी मरम खोल सकता है। बिना भजन वैराग भी डामाडौल हो सकता है।

तो, वहां 'मरम' शब्द का प्रयोग है। 'अरण्यकांड' में बीच में भी 'सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि भानस गुनी।।' नव व्यक्ति से विरोध न करना, वहां भी 'मर्मी' शब्द आया है। गुप्त रहस्य का जाननेवाला हो, उसके साथ विरोध न करे, ऐसा मारीच का चिंतन है। आगे भी एक 'मरम' शब्द आया है जो बिलकुल 'मर्म' शुद्ध शब्द है उसको 'मानस' में केवल एक बार प्रयोग किया है।

'किष्किन्धाकांड' में कोई मर्म की बात आती नहीं। लगभग नहीं है। पंपासरोवर जाते-जाते फिर मर्म की बात आई। 'सुन्दरकांड' में श्रीहनुमानजी जानकीजी की खोजके लिए आकाशमार्ग से गमन करते हैं। और जलनिधि समुद्र को लगा कि भगवान का भक्त मेरे उपर से जा रहा है, तो मैं थोड़ा विश्राम दूं। तो उसने मैनाक नामक पर्वत को बाहर आने की बात कही। ये सोने का पर्वत था। ये बाहर आया और हनुमानजी को कहा कि बाबा, थोड़ा विश्राम करो। हनुमानजी ने मैनाक जो सोने का पर्वत था उसको छुआ, प्रणाम किया और कहा, आपने मेरी बड़ी खातिर की, धन्यवाद, लेकिन रामकार्य न हो तब तक मुझे विश्राम नहीं। भक्ति की खोज के साधक का ये लक्षण है। फिर सुरसा आती है हनुमानजी को निगल जाने के लिए। हनुमानजी ने छोटा रूप लिया, सुरसा के मुंह में गये और सुरसा कहती है -

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा।
बुद्ध बल मरमु तोर मैं पावा।।

मैं आपकी बुद्धि और बल का मरम पा गई। दैवी संपदा जब हमें प्रोत्साहित करे, तब हमारी बुद्धि और बल का मरम हम जाने। हनुमानजी तीन वस्तु देते हैं-बल, बुद्धि और विद्या। यहां सुरसा के सामने हनुमानजी है। और हनुमानजी के कार्य को दैवी गुणों से प्रेरित संकेत के माध्यम से उसके बल-बुद्धि का मर्म जाना गया। निज या तो पर की बुद्धि, बल और विद्या का मर्म वो जान सकता है जिसको सद्गुरुदत्त दैवी संपदा ने धक्का दिया हो। ये छोटे-छोटे सूत्र जीवन उपयोगी है। फिर हनुमानजी आगे गये, तो फिर 'मरम' शब्द का प्रयोग -

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा।
मोर अहार जहां लगि चोरा।

श्री लंकिनी रोकती है कि तू मेरा मर्म नहीं जानता, मेरा खोराक ही लंका के चोर है!

मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।।

बुद्धि के उपर भक्ति छाई रहती है। सच्चा सद्गुरु अपनी सब ऊर्जा मुठ्ठी में रखकर साधक की बुद्धि पर ऐसा शक्तिपात करता हैं कि विषयवासना का रक्त निकल जाता है ओर साधक विरक्त हो जाता है।

तो, 'रामचरित मानस' में बिलग-बिलग प्रसंगों में मर्म की बात आती है। भगवान राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के संग जनकपुर के 'सुंदरसदन' में ठहरे हैं। बाबा विश्वामित्र की आज्ञा पाकर दोनों भाई नगरदर्शन को जाते हैं। पूरी नगरी राममय हो गई। दूसरे दिन भगवान राम-लक्ष्मण गुरुपूजा के लिए पुष्प चुनने के लिए जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं। वहां जानकी ओर राम का पहला मिलन होता है मर्यादा से युक्त। एक दूसरे के लिए समर्पित होते हैं। फिर जानकीजी माँ पार्वती के मंदिर में आती है, स्तुति करती है और माँ पार्वती के आशीर्वाद पाती है। मूर्ति बोली, 'विधाता तेरी कामना पूरी करे, राम मिलेंगे', ये आशीर्वाद दिया।

दूसरे दिन धनुषभंग का दिन है। और उस धनुषयज्ञ में राम भगवान आते हैं। कोई धनुष नहीं तोड़ पाया, क्योंकि कोई राजा गुरु के संग नहीं आया था। भगवान गुरु के संग आये थे। भगवान राम ने क्षण के मध्य भाग में धनुषभंग किया! जानकीजी ने जयमाला पहना दी। जयजयकार हुआ। परशुरामजी आये, अवकाश प्राप्त हो गये। और फिर पत्र लेकर दूत अवध जाते हैं। महाराज दशरथजी वशिष्ठजी आदि महापुरुष को लेकर जनकपुर आते हैं। मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी के दिन राम-जानकी का विवाह संपन्न हुआ। कुछ दिन बारात रुकी। महाराज मिथिलेश ने बारात को विदा दी। महाराज दशरथजी चार पुत्र और चार पुत्रवधू को लेकर अवध लौटते हैं। अयोध्या में उत्सव होते हैं। विश्वामित्रजी विदा होते हैं तब दशरथजी कहते हैं -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

हमारे यहां भ्रांति है कि 'महाभारत' घर में न रखा जाय। 'महाभारत' रखने से घर में, परिवार में कज़िया होता है! धर्म स्वयं भ्रांति पैदा कर सकता है, श्रोता की विवेकमय श्रवण और दृष्टि न हो तो। मेरे श्रोता को मेरी प्रार्थना, बहुत विवेक से सुनिएगा। 'महाभारत' रखो, पढ़ो, इससे घर में महाभारत होगा तो शांत हो जाएगा! व्यास बहुत विशाल है, संकीर्ण नहीं है। 'महाभारत' अद्भुत है। 'रामायण' के साथ पीने से और मज़ा आएगा।

मानस-मरम
॥ ८ ॥

परम तत्त्व रसरूप है

'मानस-मरम' की हम संवादी सूर में बात करते हैं। एक 'मरम' शब्द का प्रयोग गोस्वामीजी ने आगे किया है। यद्यपि मैंने बार-बार कहा है कि इसमें क्रम न भी रहे। आप 'रामचरित मानस' देखियेगा, तो भगवान तीन दिशा में अवलोकन करते हैं। लेकिन पश्चिम में स्पष्ट रूप में अवलोकन नहीं करते, यद्यपि सभी दिशा उनकी है। लेकिन स्पष्ट रूप में गोस्वामीजी ने तीन दिशाओं का अवलोकन दिखाया है। यद्यपि उनकी आंखों से ओझल कुछ नहीं है। वो सबको दिखते हैं। लेकिन लंका में भगवान ने जब निवास शुरू किया सुबेल के उपर तब प्रभु ने दो दिशाओं की ओर दृष्टि डाली है। पहले तो भगवान ने पूर्व दिशा की ओर देखा, और 'देखा उदित मयंक।' भगवान लेटे हैं। भगवान का मस्तिष्क सुग्रीव की गोद में है और प्रभु थोड़ा आराम में लेटे हैं। विभीषण भगवान के पास जाकर कुछ मंत्रणा करता है। लक्ष्मणजी विरासन में बैठे है। अंगद और हनुमान भगवान की चरणसेवा कर रहे हैं और प्रभु की दृष्टि पूर्व दिशा में जाती है और पूर्व में चंद्र का उदय देखा तो भगवान अपने मित्रों से पूछते हैं कि ये चांद निकला है उसमें काला दाग दिखता है ये क्या है? आप अपनी-अपनी मति के अनुकूल बताये।

भगवान कौतुकी भी है। भगवान सभी रस का धारक है और सभी रसों से पर भी है। प्रभु गुणातीत है। वेदांत का ब्रह्म ये है। हम रस के वंशज है। महाप्रभुजी श्रीमद् वल्लभ ने ठाकुरजी के रस में वैष्णवों को सराबोर करने की सीख दी है, अरसिक नहीं बनाया। ठाकोरजी का शृंगार, ठाकोरजी का भोग, ठाकोरजी के सन्मुख समय-समय के जो राग गाये जाते हैं। हवेली-संगीत में सब रस प्रधान है, क्योंकि प्रभु रसरूप है। राम रस है, प्रेम रस है। तुलसी को पूछो तो ध्यान भी रस है; कथा भी रस है, वक्तव्य भी रस है, श्रोतव्य भी रस है। उसके लिए जो उपकरण इकठ्ठे किये जाते हैं वो रस है। ब्रह्मरस, हरिरस पीओ। धर्म जब युवानी को रसहीन करने का बुद्धिपूर्वक प्रयास करता है तब उस धर्मोपदेशकों को हानि नहीं होती, युवानों को भी हानि नहीं होती, लेकिन धर्म को ग्लानि होगी। धर्म ग्लानि तब पाता है, जब धर्मजगत रस से दूर रहने की बात करता है।

हम और आप रस से भरे हैं। बालक जब माँ के पेट में होता है तब कहते हैं, पानी में तैरता है। पानी रसरूप है। रस न होता तो हमें पसीना न होता। रस न होता तो हमें प्यास देने का ईश्वर को अधिकार नहीं है। परमात्मा पहले पानी बनाता है, फिर प्यास देता है। हरि का नाम लेने से आंख में आंसू आ जाय ये प्रमाण है, तुम्हारे में रस है। तो, परमात्मा बहुत रसिक है। जिसस कम मुस्कुराये हैं; उसके चेहरे पर एक करुणा छाई है। कई ऐसे मिलते हैं जिसके चेहरे पर मुस्कुराहट कम है।

हमें मुस्कुराता हुआ ईश्वर चाहिए। ओशो ने कभी कहा था, विश्व को मुस्कुराता हुआ धर्म चाहिए, नृत्य करता हुआ धर्म चाहिए। मैं क्यों मेरी व्यासपीठ के यज्ञ में सभी को निमंत्रित करता हूं? उसका मुझे तो बहुत आनंद है। ये सब रस की सृष्टि परमात्मा की साधना है। आप सोचो, नमकीन समंदर से रत्न आये हैं, आकाश से नहीं आये। सत्संग मंथन करने की प्रक्रिया, एक इनर प्रोसेस है, जो कभी रमण ने करवायी, कभी अरविंद ने करवाई। संत ज्ञानेश्वर यद्यपि वेदांती है, रस का अनादर नहीं है। और इसमें एक अवतार हमारे यहां ऐसा आया भगवान श्रीकृष्ण। भगवान हर प्रकार से पूर्ण है, रसप्रधान है।

दुनिया को रस चाहिए, फिर भी अपने मान-मरतबा, प्रतिष्ठा ने उसको रसहीन बना दिया! कहां गया हमारा रस? और हमें पकड़वा गया कि संसार खारा है! ये सब आसक्ति न हो इसलिए उसी समंदर में मकरसंक्रांति में लाखों लोग स्नान करते हैं। इसी खारे समंदर से चौदह रत्न निकले। आकाश से रत्न नहीं आये। यही खारा समंदर जब भाप बनता है, बादल बनता है, गर्जन शुरू होती है, बारिश की ब्योछारें शुरू हो जाती है, धरती हरियाली हो जाती है। ये सब रस है, साधना है।

भारत तत्त्व का देश है, भारत सत्त्व का देश है, स्थूल का नहीं। स्थूल से जो यात्रा आरंभ होती है सूक्ष्म की। अप्सरा निकली थी क्या मतलब था? मेरी व्यासपीठ का मतलब यही है कि इस खारे समंदर से एक रस डूबोनेवाला, परमात्मा के करीब पहुंचानेवाला नृत्य पैदा हुआ था। साहब, स्टेज पर तो सब नाच सकते हैं; वो जल पर नाच गये, तरंगों में नाच गये! जहां कोई बना बनाया स्टेज नहीं था। सुख-दुःख की तरंगों में जो नाच सकता है वो खारे समंदर का रत्न है। इससे सूरा निकली थी अवश्य। तो बाप, भारतीय पौराणिक प्रकरणों के अनुसार ये सागरमंथन से निकली थी सूरा, इस सूरा का मतलब क्या है? इसका मरम है, जो 'रामचरित मानस' खोलता है -

जाहि सनेह सूरा सब छाके।

भरत ने वो सूरा पी थी। प्रेम की सूरा, स्नेह की सूरा इतनी पी थी कि आंखों के पैमानों में समा न सकी! ये रस है, ये रत्न निकला था। ये खारे समंदर से लक्ष्मी निकली थी, महालक्ष्मी। अपनी-अपनी औकात, अपने-अपने प्रारब्ध, पुरुषार्थ की सीमा में हमें जो कुछ सुविधायें प्राप्त होती है, जो कुछ हमें मिलता है। इस संसार में ये सद्लक्ष्मी इस खारे समुंदर का रत्न है। नई आंख से पुराना जगत देखो। सुना है इस खारे समंदर से निकला था एक परम वेद। समाज की नादुरस्ती के ईलाज निकले थे इस समंदर से। इस खारे समंदर के मंथन से निकला था कल्पतरु। ये खारे सागर में जो कल्पना करो वो कुंपलें निकलेगी अपनी औकात के अनुसार।

तो, हम इतने आसक्त न हो जाय, इसलिए हमें सावधान किया गया है। बाकी, सारा समंदर आखिर में बादल बनकर बरसता है, पूरे जगत को हरा-भरा कर देता है। और क्यों चिंता करते हो? ज़हर निकला तो महादेव मौजूद है। कोई पीनेवाला होता ही है। ज़हर तो हर समंदर से निकला है। कोई बुद्धपुरुष पी गया, कोई महादेव आकर पी गया।

यूं तो मैं सुक्रात नहीं था, ज़हर बचा था क्या करता?
ये फ़र्ज अदा मेरे सिवा कौन करेगा?

- विज्ञानव्रत

कोई होता है महादेव समाज में, जो पी लेता है। तो, इस खारे समंदर से सब निकला है। पृथ्वी के तीन भाग में पानी है। ये अकारण नहीं बनाया होगा। संसार खारा है ये समझकर भागो नहीं, जागो। सत्संग है विद्या। मैं बोलता हूं आप इकठ्ठे हो जाय इसलिए। मैं चूप हो जाता हूं, मैं इकठ्ठा रहूं इसलिए। व्यासपीठ बोलेगी तो आप सब इकठ्ठे हो जायेंगे। कुछ समय के लिए राग-द्वेष की तरंगें खतम! एक एकता आती है और कोई व्यासपीठ न बोले और उसका मौन ये खुद को इकठ्ठा कर देती है। आदमी को मौन रहना चाहिए। जो मौन रहता है, वो शास्त्र की दो पंक्ति के बीच में खालीपन होता है उनको पढ़ लेता है।

बुद्धपुरुष हंसता होना चाहिए। आज तो चाईना में भी लाफिंग बुद्धा की बात हो रही है। परम तत्त्व रसरूप है। और ये सभी विद्या क्यों मेरी व्यासपीठ को विशेष आनंद दे रही है? मैं आनंद करता हूं। गुरुपदरज पाई वो क्या अरसिक हो जाय? नहीं; गोस्वामीजी कहते हैं -

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

लेकिन रस की बात में एक बात का ध्यान रखें कि कभी चित्त की स्थिति बदलने से रस कम हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं, पहले हम चौपाई पढ़ते थे तो रो पड़ते थे, अब आंसू कम आते हैं। हो सकता है, ये साधना की यात्रा के कुछ स्पीडब्रेकर है। ये बाधायें है। लेकिन मेरा रस कम हो गया, इसका शोक मत करना। हमारे गुजराती के समर्थ कवि नर्मद कहते हैं -

नव करशो कोई शोक रसिकडां,
नव करशो कोई शोक।

रस का संबंध हमारी नाभिनाल के साथ है। गुरुपद रज भी रस की महिमा गाती है। मैं निवेदन ये करना चाहता हूं कि जो हमारे सामने वस्तु आये उसको वर्तमान में उत्साह के साथ कबूल कर लो, रस लो। जो रस गया उसका कोई शोक नव करशो रसिकडां!

मेरे भाई-बहन, प्रभु रसरूप है। प्रभु के गुण रसमय है। अकेला साबून कभी कपड़े के मैल को नहीं मिटा सकता; चाहिए जल। ज्ञान लाख तुम्हारे पास आ जाय, लेकिन प्रेम का जल नहीं होगा तब तक कलेजा शुद्ध नहीं होगा। और धोने की आवश्यकता है कलेजे की। वो धुलेगा प्यार से, महोब्बत से। तो बाप, चाहिए हंसता हुआ, नृत्य करता हुआ भगवान। चाहिए धर्म ऐसा, धर्मोपदेशक ऐसा।

तो, भगवान राम ने उदित मयंक देखा। यहां परमात्मा की पूरब दृष्टि है। भगवान तीन दिशा में देखते हैं। यद्यपि सभी दिशायें उनकी है। कहां हरि नहीं है, बताओ। तो, जहां एक मर्म की बात आती है वहां, 'दच्छिन दिसि अवलोकि', परमात्मा दक्षिण में देखते हैं और 'अयोध्याकांड' में भगवान उत्तर दिशा में देखते हैं।

सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए।।

तो, आज मेरे हरि ने फिर दक्षिण दिशा में देखा। और देखा तो महारस की ओर प्रस्थान करनेवाले रावण को देखा। रावण के उपर छत्र घूम रहा है। रत्नजड़ित स्वर्ण जुले पर रावण और राणी मंदोदरी बिराजमान है। अखाडे में सभासद आ चूके हैं। रसिक गुनीजन लोग है। रावण रसिक है। और रावण का जो गुरु है शंकर ये भी रसिक है और शंकर का अवतार हनुमान भी रसिक है। शंकर की तो बात ही छोड़ो!

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।

बाप, तो रावण महारस की ओर गति कर रहा था। बड़ा सुंदर अखाडा है। नृत्य-गान-संगीत चल रहा था। रावण के दशों मस्तक से दाद मिलती थी, यानी दसगुनी दाद देता था। रावण रसिया था। हमारे शास्त्र के पात्रों बड़े रसमय है। रावण बड़ा रसिया है, शिव का जो चेला है। कविता का सर्जक है। स्वयं स्तोत्रकार है। तो, मेहफ़िल शुरू होती है। और भगवान राम सुग्रीव की गोद में सर टिकाये दक्षिण की दिशा में देखते हैं। विभीषण को पूछते हैं, 'क्या लंका में वर्षाऋतु का समय है? ये काले डिबांग बादल चढ़े आ रहे हैं। मेघ की मीठी गर्जना हो रही है। बीजलियां कोंध रही है। वर्षा की मौसम है तो सेना को कैसे रखे?' और गाया भी मल्हार जाता था। थोड़ा विभीषण को हंसना भी आया! बोले, 'मालिक बुरा न लगे तो बताउं। ये वर्षाऋतु नहीं है, ये रावण का वैभव है! महाराज, आपको जो बादल की घटा दिखती है वो बादल नहीं है, लंकेश के उपर घूम रहा मेघाडंबर छत्र है!'

ये सच है कि तूने मुझे चाहा बहुत है।
लेकिन मेरी आंखों को रुलाया भी बहुत है।

ये देवतालोग अपने संगीतवाद्यों के साथ आये, ये मृदंग पर लगती थपाट मेघगर्जना महसूस कराती है! भगवान ने महारस भंग कर दिया तीर मारकर, क्योंकि प्रभु को लगा युद्ध बाकी है, ये रावण महारस में डूब जाएगा तो रसरूप हो जाएगा, तो मेरी लीला यहां खत्म हो जाएगी। इसलिए महारस में डूबने के पहले रावण को सचेत कर दिया। प्रभु ने तीर से दाद दी! धन्य हो! बाण दाद का प्रतीक है। लेकिन गोस्वामीजी कहते हैं, तीन वस्तुओं को आहत कर दिया। उपर छत्र, इसके नीचे मुकुट और बगल में बैठी मंदोदरी के कर्णफूल। तो, ये क्रम में गिराये तब तुलसी कहते हैं, सबको देखते ये तीन

वस्तु गिरी धरती पर! कोई मरम नहीं जान पाया। उसमें प्रभु की दाद भी थी, प्रसन्नता भी थी और युद्ध का निमंत्रण भी था। और सांसारिक पदार्थों की नाशवंतता का बोध है। ये मर्म था कि मौज करो, मना नहीं है, लेकिन हरि नहीं भजा तो बड़ों-बड़ों के छत्र मिट्टी में मिल सकते हैं। ये मर्म था। छूट दी है, संसार के भोग भोगो, लेकिन याद रखो, भोग के साथ भजो भी। और रावण संकल्प करके बैठा था -

होई भजन नहि तामस देहा।

वैचारिक रूप से भी रावण ने निर्णय किया कि मैं भजन नहीं कर सकूंगा। चौबीस घंटे भजन करने की जरूरत नहीं, पंद्रह मिनिट भजो तो भी मौज-मौज है। थोड़ा समय मिलते हरि भजो। और हमारे तुलसी तो वहां तक लिखते हैं -

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुन आध,
तुलसी संगत साध की कटे कोटि अपराध।

हम थोड़े चाबीस घंटे माला फैर सकते हैं? तो, रस लो, लेकिन समय मिलते ही, 'जय राधा माधव, जय कुंज बिहारी ...' आचार्यचरण मधुसूदन महाराज कहते हैं, तुम तुम्हारा काम कर लो, कुछ घूम लो, खेलो, बच्चों के साथ बैठो, भोजन करो, सोने के वक्त सोओ, जितना चाहो जरूरी हो, तुम्हारी शारीरिक आवश्यकता के अनुसार लेकिन जब कोई ऐसा समय मिले कि न किसी से बात करनी है, निंद नहीं आ रही है, घर में पूरा प्यार का वातावरण है, अब कोई काम नहीं है, तब जो दस मिनिट मिले उसको व्यर्थ मत गंवाओ, उसमें 'हरि बोल ...' हरि भजो।

क्या आप पूरी साल कथा सुनोगे? मैं आपका धंधा बंध करवाना चाहता हूं? तुम पूरी साल मेरे पीछे घूमो ऐसा मैं कहता हूं? लेकिन पूरे जमाने को मैं कहूंगा, काम करो, खूब करो, लेकिन साल में थोड़ा समय मिल जाय एक-दो दिन, पांच दिन, नव दिन, मेरा मैदान का एलान है, आप मेरी व्यासपीठ को नव दिन दो, व्यासपीठ तुम्हें नवजीवन देगी। स्वल्प से स्वल्प धर्म का आचरण भी आदमी को कृतकृत्य कर देता है। हरिनाम की छोटी-सी कुंची जीवन को कृतकृत्य कर देती है। मतलब इतना ही है कि रावण भोगी, लेकिन मरम समझ गया, कोई ओर नहीं समझ पाया -

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान।

कोई नहीं समझा इस भेद को, केवल रावण समझा। और उसके बाद रावण राज्यसभा में दिखता है, अखाड़े में नहीं दिखता। आदमी सावधान हो गया, समझ गया। दूसरा मुकुट गिर गया! ताज गिर गया! तेरा पद सलामत नहीं है।

ज्यादा से ज्यादा भोग शरीर का उपर का भाग करता है। आंख सौंदर्य देखना चाहती है। कान अपने बारे में बहुत अच्छा सुनना चाहते हैं। जबान बहुत रस लेती है निंदा में, कुथली में। अच्छे भोजन का रस लेती है इसलिए जबान का नाम ही रसना है। घ्राणेन्द्रिय भी भोग का प्रतीक है। ये भाग पंच भोगों का प्रमाण है। इसलिए भगवान राम ने मुकुट को गिराकर समझाया, थोड़ा सावधान हो, वर्ना भोग सलामत नहीं। और मंदोदरी को संकेत करके विषयों के सुख की और इंगित किया।

तो बाप, 'मानस-मरम' की संवादीय सूर में कुछ बात हो रही है। कल हमने अति संक्षेप में

कथाप्रवाह में 'रामचरित मानस' के प्रथम सोपान 'बालकांड' को विराम दिया। 'अयोध्याकांड' का आरंभ बहुत सुख की वर्षा से हो रहा है। भगवान-जानकी जो ब्याह के आये हैं तब से अयोध्या की समृद्धि निरंतर बढ़ती जा रही है। अत्यंत सुख की परिणति फिर दुःख में होती है, इसलिए सुख की सीमा जरूरी है। अयोध्या में एक बड़ा दुःख आया। महाराज दशरथजी से दो वरदान प्रिय रानी कैकेयी ने मांगा। एक वरदान मांगा भरत को राज मिले और दूसरा राम को वन मिले! राम-वनवास होता है। लक्ष्मण, जानकी राम के संग सुमंत के रथ में बैठकर निकले जाते हैं। 'रामचरित मानस' में त्याग और समर्पण की स्पर्धा है। राम और भरत समर्पण के नायक है। इसलिए एक-दूसरे त्याग में है। तमसा तट से एक रात्रिमुकाम करके भगवान शृंगबेरपुर आये। यहां एक रात्रि रहकर सुमंत को लौटाकर भगवान गंगा के तट पर खड़े हुए और प्रभु ने एक निषाद के पास गंगापार होने की मांग की।

मागी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।

केवट कहता है, मैं आपके मरम को जानता हूं। ठाकुर को गंगापार करता है। दूसरे दिन भरद्वाज के आश्रम में आये। वहीं से भगवान वाल्मीकि के आश्रम में आये। और वाल्मीकिजी को पूछते हैं, 'प्रभु, हमको कोई ऐसी जगह दिखाओं कि हमारे रहने से किसी को तकलीफ़ न हो।' वाल्मीकि ने कहा, 'महाराज, आप हर जगह हो, फिर भी मैं आपको चौदह स्थान दिखाउं। जिसका हृदय ऐसा हो उसके हृदय में आप रामरूप में निवास हो। साधक

आपको महसूस करे।' चौदह प्रकार के हृदय की बात की।

चित्रकूट रघुनंदनु छाए।

समाचार सुनि सुनि मुनि आए।।

भगवान कण-कण में छा गये! सुमंत गंगा के तट से लौटा। महाराज को खबर सुनाई। शरीर छोड़ते समय दशरथजी ने छ बार रामनाम का स्मरण करके प्राणत्याग किया। भरतजी आये, पितृक्रिया हुई, सभा मिली। सजल नैन भरत बोले, 'राज बाद में, पहले राम चाहिए। पहले सत् चाहिए, सत्ता बाद में।'

भरत पूरी अवध को लेकर चित्रकूट आते हैं। उसके बाद जनकजी भी आते हैं। बहुत सभायें हुई। राज्य का कोई निर्णय नहीं हो पा रहा है। त्याग की बड़ी स्पर्धा चल रही है। और आखिर में भगवान राम को भरत ने कहा, 'प्रभु, आपका मन जिसमें प्रसन्न रहे वो निर्णय आप दे दो।' 'भरत, चौदह साल तू राज का संचालन करे, मैं पिता की आज्ञा मानकर वन में रहूं। और अवधि पूरी होने के बाद मैं लौट आउंगा।' भरत ने कहा, 'प्रभु, कुछ अपने हाथ से आधार दे दो, ताकि उसको देखकर दिन काटुं।' प्रभु ने चरणपादुका दे दी। भरत ने शिरोधार्य की।

सब अवध-जनकपुर लौट गये। भरत ने गुरु को कहा, 'राम वन में रहे तो मैं नगर में नहीं रह सकूंगा। मुझे नंदिग्राम में कुटिया बनाकर रहने की आज्ञा करो। मैं राज चलाउंगा, लेकिन रहूंगा तपस्वी की तरह।' वशिष्ठजी ने कहा, 'तू धर्म का सार है, रहो। लेकिन माँ की आज्ञा ले लो।' 'माँ मैं नंदिग्राम में रहूं?' माँ ने अंदर की वेदना को दबाकर हां कह दी। धन्य रामजननी। भरत ने भेख धारण किया। रामकथा प्रेमकथा है, त्याग और बलिदान की कथा है। भरत का प्रेम, उसका त्याग, उसकी महिमा कौन गाये? गोस्वामीजी कहते हैं, भरत का जन्म नहीं होता तो मेरे जैसे को राम के अभिमुख कौन करता? गोस्वामीजी 'रामचरित मानस' का दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड' पूरा कर देते हैं।

महाप्रभुजी श्रीमद् वल्लभ ने ठाकुरजी के रस में वैष्णवों को सराबोर करने की सीख दी है, अरसिक नहीं बनाया। ठाकोरजी का शृंगार, ठाकोरजी का भोग, ठाकोरजी के सन्मुख समय-समय के जो राग गाये जाते हैं। हवेली-संगीत में सब रस प्रधान है, क्योंकि प्रभु रसरूप है। ब्रह्मरस, हरिरस पीओ। धर्म जब युवानी को रसहीन करने का बुद्धिपूर्वक प्रयास करता है तब उस धर्मोपदेशकों को हानि नहीं होती, युवानों को भी हानि नहीं होती, लेकिन धर्म को ग्लानि होगी। धर्म ग्लानि तब पाता है, जब धर्मजगत रस से दूर रहने की बात करता है।

मानस-मरम
॥ ९ ॥

हम 'मानस-मरम' के बारे में बातचीत कर रहे हैं। शास्त्र में मेरा एक अनुभव रहा कि सब कुछ कहने के बाद भी सब कुछ बच जाता है! सप्तऋषियों ने पार्वती से कहा कि, आप किसकी आराधना कर रही हो और आराधना के फल स्वरूप आप क्या चाहती हो? कोई भी व्यक्ति आराधना करती है, तो इसके कुछ न कुछ फल के लिए बात होती है कि ये मिले। ये भी सत्य है। तो, साधना करना सत्य है, साधना के बाद जीव के नाते हमारी कोई चाह भी होती है। तो, मानो ये भी सत्य है। तो, सप्तऋषि का पूछना गहन बन जाता है कि दोनों में सत्य है, तो आप हमें ये बतायें कि सत्य का मर्म क्या है? लेकिन थोड़ी गहराई में जायें तो ये भी है कि साधना सत्य है। जीव के नाते साधना के फल स्वरूप हमारी कोई चाह होती है वो भी सत्य है। तो, एक दूसरा अर्थ निकलता है कि ये जो सत्य है, तो सत्य का मर्म क्या है?

मेरे भाई-बहन, मर्म जान लेने से बहुत फायदा भी होता है और कभी-कभी भेद जानने से नुक्सान भी होता है। मर्म किसी सद्गुरु से जानना। संसारी

मरम जानने के लिए किसी अधिकारी के पास जाना, अधिकारी होकर जाना

लेवल पर किसी से मर्म जानने की कसरत मत करना। क्या फायदा? लेकिन अध्यात्मप्रदेश में जिज्ञासा की छूट है। ब्रह्म तक की जिज्ञासा का हमें वरदान मिला है। ब्रह्मजिज्ञासा, भक्तिजिज्ञासा अथवा धर्मजिज्ञासा आदि-आदि। और जब योग्य जिज्ञासा होती है, बुद्धपुरुष के पास होती है, तब उसका एक जवाब भी है। और वो है -

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं।

गूढ से गूढ रहस्य भी साधुपुरुष छिपाता नहीं है, शर्त छोटी सी -

आरत अधिकारी जहँ पावहिं।

रहस्य अधिकारी से पूछे। और यदि हमें अधिकारी मिल जाय तो अधिकारी भी सावधान होते हैं कि जिज्ञासु आर्त अधिकारी को ही रहस्य बताया जाय।

अधिकारी किसको कहे? हम तो अपनेआप को अधिकारी मानते हैं। लेकिन खुद का प्रमाणपत्र ठीक नहीं चलता, खुदा का होना चाहिए। अधिकारी होने की कुछ शर्त होती है। अंदर से अहंकारमुक्त हो जाय वो अधिकारी होता है। अहंकारयुक्त व्यक्ति जिज्ञासा करेगा तो भी पाने के लिए नहीं, नापने के लिए करेगा कि उसमें कितना पानी है जरा देखें! अहंकारमुक्त ये अधिकारी की प्रथम पहचान। मुश्किल है अधिकारी होना।

दूसरा, जिज्ञासा करने कि फलां भाई ने कितना अच्छा प्रश्न पूछा और उसकी सराहना यदि व्यासपीठ कर ले, लेकिन कोई आपकी सराहना कर दे और आप इधर-उधर देखने लगे, आपको थोड़ी भी अहंकारवृत्ति जगे कि मेरे लिए कुछ ओर बोले, मैंने जो प्रश्न पूछा उसके बारे में कुछ ओर जिक्र हो, ऐसी अहंकारवृत्ति पैदा हो जाय तो समझना अधिकारपना गया। हमारी गंगासती कहती है, 'सद्गुरु वचनोना थाव अधिकारी पानबाई।' तो, जहां अधिकारी बुद्धपुरुष मिल जाय और बुद्धपुरुष को अधिकारी जिज्ञासु मिल जाय तो -

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं।

आपके सामने कोई मुस्कुरा दे, फिर भी आप जान ले कि अंदर से आदमी रो रहा है, तो इस मुस्कुराहट की पहचान का अधिकारी है। कई लोग ऐसे होते हैं कि उपर से कभी रोये ना। लेकिन अधिकारी जानता है, अंदर से आदमी टूट चूका है। गोपियां जानी जाती है, क्योंकि रो सकती थी। गोप नहीं जाने गये, क्योंकि रो नहीं पा रहे थे। गोपी प्रेम की धजा है। गोपी प्रेम की आखिरी अवस्था है।

प्रेम समझना चाहो तो चार वस्तु की चर्चा कभी मत करना, स्त्री, नास्तिक, धन और वैरी। ये नारद भक्तिसूत्र है। अकारण ये चारों की चर्चा में मत जाना। यद्यपि आचार्यों ने आसक्ति से असंग रहने के लिए कुछ बातें जरूर कही, लेकिन उसका मर्म आचार्य जानते थे। बिना जाने गतानुगति मत करो। किसी मातृशरीर की आलोचना मत करो। 'स्त्री ये नरक की खाण है', ऐसा मत बोलो।

दूसरी बात है, वैरी की चर्चा न करो। तुम्हारा जिसने अहित किया है उसकी चर्चा में बार-बार जाने से प्रेम की धजा नीचे आने लगती है। तीसरी बात आई है नास्तिक की। वो ईश्वर में न मानता, वो कथा नहीं सुनता, वो देवदर्शन नहीं करता, भगवान में मानता नहीं! यदि प्रेम पर पहुंचना है, तो जरूरत नहीं ये चर्चा की। और चौथा है, धनवान की चर्चा न करो। ये धनवान है, ये है, ऐसा है, उसमें न जाओ। द्वेषदिल से न जाओ। प्रकाश डालने के लिए जरूर मैत्रीभाव से कहे, लेकिन द्वेषदिल से बात न करो।

तो, मर्म पहचान। चाहे सत्य का मर्म क्या है? चाहे प्रेम का मर्म क्या है अथवा मेरी व्यासपीठ का सार है वो करुणा का मर्म क्या है? इन तक पहुंचने के लिए केवल बाहरी वस्तु पर दृष्टि टिकी रहे, पर्याप्त नहीं। और 'महाभारत' के पात्र को उपर से देखो तो कितने दुर्जन की चरमसीमा पर पहुंचे हैं! लेकिन उसके मर्म को व्यास की लेखनी से हम कोशिश करे तब लगता है, कुछ बिलग है। अधिकार के बिना मर्म जाना नहीं जाता। इसलिए मर्म जानने के लिए कोई अधिकारी बुद्धपुरुष का संग जरूरी है। मेरे पास एक शे'र है, शायद फ़राज़ सा'ब का है -

मांगी थी हमने तुम से महोब्बत की ज़िंदगी,
तुमने तो ज़िंदगी को महोब्बत बना दिया।

तो बाप, 'महाभारत' के क्रिष्न के उपर के कार्यकलाप देखकर क्रिष्न का मर्म कौन समझ पाया? तत्कालीन समाज, व्रज में, गोकुल में भी ऐसा था जो क्रिष्न की आलोचना करता था! कौन जाने मरम? इसलिए हमारी पावन परंपरा में आया गुरुपद। किसी का मार्गदर्शन आवश्यक रहा रहस्यों को समझने के लिए।

आज किसी ने पूछा है, 'भगवान क्रिष्न को जानने के लिए हमें ये बताये कि भगवान क्रिष्न रोज क्या करते थे?' प्रेम। उसकी प्रत्येक क्रियाकलाप का मर्म था प्रेम। मेरा 'मानस'कार कहता है, 'राम हि केवल प्रेमु पिआरा।' फिर भी आपने पूछा तो भागवतकार भी कहते थे, क्रिष्न रोज नव काम करते थे। क्रिष्न की दिनचर्या प्रेमीओं, सुनो।

एक, लिखा है व्यास की लेखनी से, सुबह भगवान श्रीकृष्ण जागते ही ध्यान करते थे बिना स्नान किये, ये स्पष्ट है। ये बहुत आवश्यक है कि आदमी को चाहिए, पांच-सात मिनिट ध्यान मानी शांति। आत्मस्वरूप का ध्यान करते थे। सुबह में गोविंद ध्यान करते थे। किसीसे कोई परम सत्य सीखना हो, तो क्रिष्न से अतिरिक्त कौन हमारा आदर्श बन सकता है? यद्यपि तुम्हारा आदर्श तुम हो, उधार आदर्श की जरूरत नहीं। मार्गदर्शन सबसे लो, लेकिन मैं मेरा आदर्श होना चाहिए। किसी से प्रभावित न हो, स्वभावित रहना। प्रभाव उधार होता है, स्वभाव नगद होता है। 'उत्तमा सहजावस्था।'

भगवान क्रिष्न स्वरूप का ध्यान करते थे। अपने ब्रह्मस्वरूपजी ठाकोरजी रस में डूबते थे। ऐसा क्रम बताया। हमारे यहां ध्यान के अनगनित प्रयोग है। ओशो ने भी बड़ा उपकार किया कि ध्यान की कई बातें बताई गई। ध्यान बहुत अद्भुत चीज है, करो। ध्यान बहुत महिमावंत है और सतजुगी साधन है ध्यान। त्रेतायुग में लोग यज्ञ करते थे। किसीको कुछ दो वो यज्ञ है। आपके पास विपुल मात्रा में कुछ है और वो न दो तो याद रखना, अतिशय लोभ कीर्ति का नाश करता है। यद्यपि 'रामायण' में तो 'अल्पलोभ' लिख दिया। अल्पलोभ भी अच्छेपन का छेद उड़ा देता है। लेकिन ये तुलसी पांच सौ साल पहले कह गये; अभी हम कहते हैं, अतिशय लोभ कीर्ति का नाश करता है। अत्यंत कामुकता अपनी काया का नाश करती है, शरीर को खत्म कर देती है। अत्यंत क्रोध आदमी के विवेक का नाश करता है। अच्छा आदमी होता है, लेकिन क्रोध करता है, विवेक नष्ट हो जाता है। धर्म नष्ट हो जाता है। आदमी धार्मिक नहीं रहता। तो, किसी को दो ये यज्ञ है। किसी को मुस्कुराहट दो। किसी के आंसू पी जाओ ये यज्ञ है।

मेरे भाई-बहन, क्रिष्न पहले ध्यान करते। फिर वो स्नान करते। ध्यान है मन के लिए शुद्धता को निमंत्रण और स्नान है शरीरशुद्धि का प्रथम कदम। और तीसरा, उसके बाद भगवान मंत्र का जप करते थे शांति से बैठकर।

नमः शिवाय ॐ नमः शिवाय।
हर हर हर भोले नमः शिवाय।

ये शंकर का जाप करे, शंकर उसका जाप करे! क्रिष्न अने हनुमानने जेटलुं बन्युं एटलुं कोईने बन्युं नथी! देखो, 'महाभारत'में क्रिष्न की एन्ट्री बहुत देर से होती है, 'रामायण' में हनुमान की एन्ट्री भी बहुत देर से होती है। 'महाभारत' में क्रिष्न का सबसे पहला प्रवेश द्रौपदी स्वयंवर में होता है, देर से आये। लेकिन ये उसके बाद पूरे 'महाभारत' की लगाम उनके हाथ में है। कोई कार्य

उनके बिना नहीं हुआ। हनुमान 'किष्किन्धाकांड' में आये, लेकिन आने के बाद 'रामायण' के प्रत्येक कार्य हनुमान के सिवा अधूरा है। क्रिष्न ने देर से आकर पूरा कमान्ड संभाला, लेकिन जो घटा क्रिष्न के कारण। लेकिन सब दूसरों को दे दिया! ऐसे 'रामायण' में सब घटा हनुमान के कारण, लेकिन किष्किन्धा सुग्रीव को, लंका विभीषण को, अयोध्या राम को। दोनों फकीर की तरह रहे। दोनों गिरिधारी, दोनों अकिंचन। प्रेम क्रिष्न का मंत्र था। उसका जाप करते थे।

चौथा, 'महाभारत'कार कहते हैं, क्रिष्न अग्निहोत्र करते थे। अग्निहोत्री थे क्रिष्न। रोज अग्नि को आहुति देते थे। अब कहेंगे, हम अग्निहोत्र न कर पाये, कहां करे? लेकिन कोई भूखा मिल जाय और उसके पेट में भूख की अग्नि हो उसमें आदर के साथ रोटी देना ये अग्निहोत्र है, ये यज्ञ है। पांचवां क्रिष्न का कार्य अतिथि-द्विज आंगन में आया हो उसको रोज दान देना। ध्यान, स्नान, जप, अगिनहोत्री और अतिथि का सत्कार। फिर उसके बाद उसके आंगन में वेद का गायन होता था।

सातवां, उसके बाद घर में जो शुभ चीजें होती थी उसको स्पर्श करते थे। मंगल चीजों को छूना नित्यकर्म था क्रिष्न का। प्रत्येक घर में मंगल चीजें होती है। घर में कोई शुभ न लगे तो तुलसी के क्यारे को छू लेना। तुम्हारे आंगन में गाय हो, तो छू लेना। शुभस्पर्श में गो है, शुभस्पर्श में पिपल का वृक्ष है, शुभस्पर्श में वट का वृक्ष है, शुभस्पर्श में तुलसी का पत्र है। जमुनाजी की लोटी घर में हो तो छुओ, शुभदर्शन है। कांचन का स्पर्श शास्त्र में मंगल माना जाता है। शिशुस्पर्श शुभस्पर्श है। किसी बुद्धपुरुष की पादुका का स्पर्श। चंदन का स्पर्श शुभस्पर्श है। महाकाल की भस्म को छूना शुभस्पर्श है। तो, भगवान श्री कृष्ण ऐसे शुभ को छूते थे। और आठवां था दर्पण में देखना। ये शास्त्रीय पद्धति है, दर्पण में देख लेना, अपनी निजता का बोध कर लेना। दर्पण निजदर्शन है। और नवमें स्थान पे आती थी दुनियादारी, राजकीय मिटिंग, पांडवों से वार्तालाप, यादवों से वार्तालाप, सब राजकीय, सामाजिक सभी नवमें स्थान पे। ये हमें नहीं लगता कि हम भी न कर पाये।

तो, ऐसे-वैसे से मरम जानने की कोशिश मत करना। किसी बुद्धपुरुष से मरम जाने, जो अधिकारी है और उसको ही मर्म बताया जाय, उसके पास भेद खोला जाय, जो अधिकारी है। गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को बुद्धपुरुष छिपाता नहीं, लेकिन आरत अधिकारी मिले।

हम संसारी को मरम जानने की कोई जरूरत नहीं। परम का मरम समझ में नहीं आता। इसलिए कोई सत्य का मरम क्या है, प्रेम का मरम क्या है, करुणा का मरम क्या है, ये जानना आध्यात्मिकता है। मेरे पास 'मरम' शब्द का लिस्ट आया है। पैंतालीस बार गिनती आई है, भूलचूक लेवी-देवी!

इधर-उधर का मरम जानने की चेष्टा न करे। हरि का मरम जानने की हमारी औकात नहीं है। यदि कुछ विशेष जानना ही है, तो अधिकारी के पास जाईए। अधिकारी होकर जाईए, तब मरम के रहस्य खूलते हैं। तो बाप, सत्य का मरम, प्रेम का मरम, करुणा का मरम इतना समझ में आ जाय तो मुझे लगता है जिस वेशमें, जिस परिवेश में हम है, हम ज्यादा से ज्यादा प्रसन्न रह सकते हैं।

गोस्वामीजी वैराग्यप्राप्ति का सरल साधन बताते हैं कि वैराग कैसे आये? विरति मानी वैराग। भरत का चरित्र, भरत का प्रेम और भरत की तपस्या अथवा उसका नेम गायेंगे, उसका नाम कोई सुमरेंगे, तो सकल अमंगल का नाश होगा। जो आदर और श्रद्धा से श्रवण करेंगे उसको सीताराम के चरण में प्रेम होगा। और प्रेम होगा तो अवश्य वैराग्य आयेगा। मेरी व्यासपीठ का सूत्र है, प्रेम से त्याग आता ही है, सत्य से निर्भयता आती ही है और करुणा से अहिंसा प्रकट होती ही है। ये तीन न हो, तो ये तीनों सूत्र के मर्म को हम पकड़ नहीं पाये। तो, प्रेम है वहां वेराग्य अवश्य होगा।

चित्रकूट से राम-लक्ष्मण-जानकी ने यात्रा आगे की और महर्षि अत्रि के आश्रम में आये। महर्षि ने भगवान की पूजा करके सुंदर शब्दों में स्तुति की -

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं।।

अत्रि के आश्रम से यात्रा आगे बढ़ती है। सरभंग महात्मा मिले। सुतीक्ष्ण महाराज मिले। प्रभु कुंभज के आश्रम में आते हैं। कुंभज बड़े प्रसन्न हुए। वहीं से तीनों आगे बढ़े। गोदावरी के तट पर पंचवटी में आते हैं। रास्ते में जटायु मिल गया। गीधराज से प्रभु ने मैत्री की। और प्रभु पर्णशाला बनाकर पंचवटी में निवास करते हैं। एक दिन लक्ष्मणजी पांच प्रश्न प्रभु को पूछते हैं। रामजी लक्ष्मण के आध्यात्मिक प्रश्नों का जवाब देते हैं जिसको 'रामगीता' कहते हैं। उसके बाद एक घटना घटी। शूर्पणखा आई। इसका मतलब गोस्वामीजी बताते हैं कि आदमी को किसी बुद्धपुरुष के द्वारा जागृति विशेष आ जाती है तभी ही वासनारूपी शूर्पणखा डिस्टर्ब करती है, आती है। शूर्पणखा अपमानित की गई। और वो खर-दूषण को उकसाती है। रावण को उकसाया। रावण ने जानकी के अपहरण की योजना बनाई। जानकीजी का अपहरण हुआ। जटायु ने रावण से विद्रोह किया। संघर्ष किया। रावण ने जटायु की पंखें काट दी, असहाय गिर पड़ा। रावण जानकीजी को लेकर अशोकवन में सुरक्षित रख देता है।

यहां भगवान मारीच को निर्वाण देकर आये। लक्ष्मण को आते देखकर प्रभु को चिंता हुई। दोनों दौड़कर आश्रम आये। सीताविहीन आश्रम देखकर प्रभु मानवलीला करते रोते हैं। जटायु मिला, जटायु ने सब कथा सुनाई। प्रभु ने जटायु को गोद में लिया। पितातुल्य आदर देकर जटायु का संस्कार किया। प्रभु वहीं से आगे निकले। रास्ते में कबंध मिला। कबंध को निर्वाण दिया और प्रभु जानकीजी की खोज करते शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी ने परमात्मा का दर्शन किया। वहीं से भगवान पंपासरोवर गये। नारदजी मिले, अच्छी चर्चा हुई। फिर भगवान वहीं से आगे बढ़े।

'किष्किन्धाकांड' शुरू हुआ। हनुमानजी आते हैं। सुग्रीव और रामजी की भेंट कराते हैं। वाली को निर्वाण मिला। सुग्रीव को राज मिला और अंगद को युवराज पद मिला। प्रभु चातुर्मास करने प्रवर्षण पर्वत पर गये। जानकी की खोज की योजना बनाई। चार टुकडी बनाई। हनुमानजीवाली टुकडी का नायक अंगद, जो दक्षिण दिशा में जाने की सूचना मिली। सबसे पीछे हनुमान ने प्रभु को प्रणाम किया। प्रभु ने मुद्रिका दी। स्वयंप्रभा मिली। संपाति मिला। समंदर के तट पर संपाति ने कहा, जानकीजी लंका में है। हनुमानजी को आह्वान दिया। हनुमानजी पर्वताकार बनते हैं। जामवंत ने कहा, 'लंका जाकर माँ को संकेत देना, माँ का संकेत लाना। फिर प्रभु सेना लेकर जायेंगे।' 'किष्किन्धाकांड' पूरा हुआ।

'सुन्दरकांड' के आरंभ में प्रसिद्ध पंक्ति -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

विभीषण-हनुमानजी की मुलाकात हुई। युक्ति दिखाई। हनुमानजी माँ जानकी तक पहुंच जाते हैं। मुद्रिका दी। जानकी को राम का संदेश दिया। हनुमानजी को भूख लगी, फल खाये। राक्षस लोग विक्षेप करने आये। आखिर में अक्षयकुमार मरा। हनुमानजी को बांधकर रावण की सभा में ले गये। हनुमान को मृत्युदंड का आदेश दिया। विभीषण ने दूत को मारने की मना की। पूंछ जलाने की चेष्टा की। हनुमान की पूंछ जलाई। रामकृपा से हनुमानजी पूरी लंका जलाकर माँ से चूडामणि लेकर लौटते हैं। रामजी को संदेश दिया। भगवान ने कहा, अब विलंब न करे। प्रभु की सेना का अभियान। प्रभु तीन दिन अनशन पर बैठे। फिर समुद्र को दंड की बात आई तब शरण में आया। सेतुबंध का प्रस्ताव रखा। 'सुन्दरकांड' पूरा हुआ।

'लंकाकांड' के आरंभ में भगवान सेतुबंध निर्मित करते हैं। प्रभु ने कहा, मेरी इच्छा है यहां शिव की स्थापना करूं। सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना हुई। सुबेल पर डेरा डाला। प्रभु ने अपना आगमन का परिचय करवाया। दूसरे दिन अंगद संधि प्रस्ताव लेकर गया। संधि हुई नहीं। युद्ध अनिवार्य हुआ। भीषण युद्ध हुआ। संघर्ष में एक के बाद एक राक्षस का निर्वाण होता है। आखिर में इकत्तीस बाण चढ़ाकर परमात्मा रावण को निर्वाण देते हैं। रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया। रावण का संस्कार हुआ। विभीषण को राज्य मिला।

जानकीजी को खबर दी गई। मूल जानकी प्रकट हुई। पुष्पक तैयार हुआ। राम-लखन-जानकी और सभी मित्रगण अयोध्या की यात्रा के लिए लंका से प्रभु का विमान ऊड़ान भरते-भरते आगे बढ़ा। हनुमानजी को अयोध्या जाने की सूचना दी। प्रभु चौदह साल के बाद पुनः केवट के पास शृंगबेरपुर आये। प्रभु ने गुह को संग लिया। भरत के पास हनुमानजी आये। हनुमानजी ने परिचय दिया अपना। सीता और लक्ष्मण सहित ठाकुर अयोध्या आ रहे हैं। पूरी अयोध्या में खबर गई है।

अयोध्या में ठाकुर नीचे ऊतरे। प्रभु ने अनेक रूप धारण कर लिये। सबको अपनी इच्छा के अनुरूप मिले। ये मरम कोई नहीं जान पाया। प्रभु पहले माँ कैकेयी के पास गये। सुमित्रा का दर्शन किया। कौशल्याजी के पास आये। जानकी को देखकर तीनों मातायें रो पड़ी। दिव्य सिंहासन मागा। सत्ता राम के पास आई, सत् को सत्ता के पास नहीं जाना पड़ा। भूमि को, सूर्य को, दिशाओं को, ऋषिमुनिओं को, माताओं को, जनता को प्रणाम करते भगवान गादी पर बिराजे। सियाजु वामांग हुई है। त्रिभुवन को राज्य देते पहला तिलक वशिष्ठजी ने किया -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

छ मास बीत गये। हनुमान को छोड़कर सभी मित्रों को बिदा दी। समयमर्यादा पूरी हुई। जानकीजी ने दो पुत्रों को जनम दिया। दुर्वादवाले प्रसंग तुलसी नहीं लिखते। 'मानस' संवाद का शास्त्र है। दिव्य रामराज्य की बात हुई। फिर कथा को विराम दिया। उसके बाद 'उत्तरकांड' में बाबा कागभुशुंडिजी की कथा है। गरुड ने सात प्रश्न पूछे। उसके आध्यात्मिक उत्तर दिये। और गरुड सद्गुरु के चरण में प्रणाम करके वैकुंठ गया। याज्ञवल्क्य के प्रयाग में कथा को विराम दिया कि नहीं, रहस्य है। कैलास से महादेव पार्वती को कथा सुना रहे थे, वहां भी विराम दिया। कलिपावन अवतार तुलसीदासजी अपने मन को कथा सुनाते थे दीनता के घाट पर। तुलसी ने रामकथा को विराम दिया। इन चारों आचार्यों की छाया में बैठकर गुरुकृपा से मैं आपके सामने गा रहा था। मैं भी अपनी वाणी को विराम देने की ओर हूं तब कहूं जो तुलसी ने कहा वो शब्द, यह कलिकाल में राम को समरो, राम को गाओ।

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

हनुमानजी के चरणों में प्रार्थना करूं, खुश रहो। 'मानस-मरम', आप सब को साथ लिये हुए मैं ये कथा महारथि कर्ण को समर्पित करता हूं।

मरम अधिकारी से पूछे। अधिकारी किसको कहे? अंदर से अहंकारमुक्त हो जाय वो अधिकारी होता है। अहंकारमुक्त ये अधिकारी की प्रथम पहचान। दूसरा, आपको थोड़ी भी अहंकारवृत्ति जगे कि मेरे लिए कुछ ओर बोले, मैंने जो प्रश्न पूछा उसके बारे में कुछ ओर जिक्र हो, ऐसी अहंकारवृत्ति पैदा हो जाय तो समझना अधिकारपना गया। आपके सामने कोई मुस्कुरा दे, फिर भी आप जान ले कि अंदर से आदमी रो रहा है, तो इस मुस्कुराहट की पहचान का अधिकारी है। किसी बुद्धपुरुष से मरम जाने। जो अधिकारी है और उसको ही मरम बताया जाय, उसके पास भेद खोला जाय, जो अधिकारी है।

मानस-मुशायरा

शिरहाने मीर के आहिस्ते बोलो,
अभी तो सोया है ये बच्चा रोते-रोते।
– मीर

शायरी तो सिर्फ़ एक बहाना है,
असली मकसद तो तुझे रिझाना है।
– दीक्षित दनकौरी

यूं तो मैं सुक्रात नहीं था, ज़हर बचा था क्या करता?
ये फ़र्ज अदा मेरे सिवा कौन करेगा?
– विज्ञानव्रत

किसी फकीर का दस्ते दुआ चलाता है।
हकुमतें नहीं चलाती, खुदा चलाता है।
तुझे खबर ही नहीं, मेले में घूमनेवाले,
तेरी दुकान कोई दूसरा चलाता है।
– राहत इन्दौरी

इसी बहाने लकीरों को भी बदल आउं।
ये सोचता हूं कि जन्नत तलक टहल आउं।

●

मैं रोशनी हूं मुझे कैद कर नहीं सकते।
जरा दरार भी दिख जाये तो निकल आउं।
– मिलिन्द गढवी

शास्त्र और धर्मग्रंथो का पठन नहीं, अवलोकन करना चाहिए

पूज्य इन्दिराबेटीजी के अमृत महोत्सव प्रसंग पर मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

आज के शुभ प्रसंग पर सबसे पहले पूज्यपाद भगवान वल्लभाचार्यजी भगवान के चरण में मानसी दंडवत् कर, आज के उत्सव के प्रधान स्थान पर बिराजमान हम सबके पूज्य १०८ आचार्य के चरण में दंडवत् कर जिनके प्राकट्य का महोत्सव हम सब हृदयपूर्वक मना रहे हैं ऐसी परम पूजनीया श्री जीजी के चरण में प्रणाम। सभी पूज्यचरण, समग्र वल्लभकुल, विधविध क्षेत्र के आदरणीय महानुभव और समस्त वैष्णव भाईयों और बहनों। मुझे संकोच होता है कि यहां इतने पूज्यचरण बिराजमान है उनकी उपस्थिति में कुछ बोले; पर यह तो वल्लभकुल में प्रकट एक पुष्प। एक बालक को मंजूरी मिले तो वह अपने हृदय के भाव व्यक्त करे। कथाजगत के नाते प्रणामकर थोड़े शब्द बोलने का आपश्री ने अधिकार दिया, आदेश दिया उसे नतमस्तक स्वीकार करता हूं। मेरे कथन में यदि अविवेक हो तो पहले से ही क्षमा चाहता हूं और मेरा भाव व्यक्त करता हूं।

मुझे निमंत्रण देने में आपका विवेक था पर उसे मैंने आदेश मानकर स्वीकार किया, फर्ज समझकर यहां आया इसे मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता। पर यहां आकर, दर्शन कर, उत्सव में उपस्थित रहकर सचमुच हृदय में आनंद हुआ। मैं सुबह का निकला हूं। मैं अभी पूज्यचरण से बात कर रहा था कि थकान कब होती है? उन्होंने इसका सुंदर निरूपण किया। अच्छा मार्गदर्शन दिया। मैं तो यही कहूंगा कि यहां आने से थकान उतर गई है। आचार्य तो हंमेशा युवा रहे ऐसा आदेश है। शिष्य भले वृद्ध हो जाय। आद्य जगद्‌गुरु शंकराचार्य दक्षिणामूर्त गुरु मौन है, युवान है।

पूज्य जीजी मुझे ऐसा भी कहती थीं यों संकल्प शुभ-शुभ होते रहते है पर पूरे हो या न हो क्या किया जाय? एक अर्थ में तो हमारे पास ऐसी बात भी है 'सर्वारंभ परित्यागी' और 'रामचरित मानस' भी कहे 'अनारंभ अनिकेत अमानी।' पर आप थक जाय यह समाज मंजूर नहीं करेगा। पूज्यश्री ने शरीर के धर्म पर अच्छी तरह से मार्गदर्शन किया। वेद भगवान का एक वाक्य 'नवो नवो भवति जाय मानव...।' जो प्रतिदिन नए होते हैं और भगवन्, अविवेक लगे तो क्षमा कीजिए शायद स्मृति में न रहे, परंतु श्रीमद् भागवत्‌जी का एक वाक्य है, घी के दीये में से घी न रहे तो नया घी डालने से दीया प्रज्वलित होता रहता है यों वेद भगवान की आज्ञा से आदमी को प्रतिदिन नया रहना चाहिए। साधारण मानव को भी हररोज नया होना चाहिए। अपने पूज्य आचार्य थक जाय यह तो पुसाने योग्य नहीं है। आपके कितने ही शुभ प्रकल्पों का मैं साक्षी हूं। इस उम्र में भी कितने सेवा प्रकल्प निष्ठापूर्वक अनन्य भाव से समग्र समाज के लिए शुभ करते हैं इसमें मैं अपना सूर मिलाता हूं।

आपश्री ने जो आशीर्वाद दिए इसका मुझे फायदा हुआ है कि मुझे अभी पच्चीस साल जीना है। अत: यह वाया वाया आशीर्वाद मुझे मिले इसके आभारी हूं। हम सब मिलकर उत्सव मनाए। 'नवो नवो भवति जाय मानव .....' नदी का प्रवाह हररोज नया रहना चाहिए। मानव हरहोज़ नया लगना चाहिए। 'दिने दिने नवं नवं।' प्रतिक्षण वर्धमान। 'रामचरित मानस' में कहा है, 'छन छन नव अनुराग।' बिना अतिशयोक्ति के कहूं कि मुझे जब-जब आपके दर्शन हुए हैं तब-तब वही मुस्कुराहट, वही सादगी, वही वैष्णवी सरलता, ऐसे मैंने आपके नित्य नूतन दर्शन किए हैं।

बाप, नित्यनूतन रहना हो तो क्या करना चाहिए? रोज़ स्फूर्ति में रहना, समाज को इतने वर्ष देने के बाद भी नित्यनूतन बने रहना इसके लिए हमें क्या करना चाहिए? फिर से एक बार भगवान वेद का स्मरण होता है। यहां मुझे क्या बोलना है, मुझे पता नहीं था। संकोच भी रहता है कि सबके बीच कहीं अविवेक न हो जाय, ऐसा लगता रहे। आप सब मेरे पूज्य हैं अत: हौसला लेकर कुछ कहूं।

सप्तमर्यादा: कवयस्ततक्षु:।

यह भगवान वेद का वैश्विक अमृत वचन है। सात मर्यादाएं हैं। इस पुष्टि परंपरा में श्रीमन् महाप्रभुजी की पावन परंपरा में, जिसे मैं प्रवाही परंपरा कहता हूं। जिसका मैं एकमार्गी रहा हूं। गंगाजल बहता रहे तो पाप

धुलते हैं, शरीर भी स्वच्छ रहे पर उसी प्रवाह का बर्फ बन जाय तो शायद ही हमारा फायदा हो। अत: मैं समस्त परंपरा को प्रवहमान देखता हूं और नई-नई चेतना जो आ रही है, युवा चेतना का प्राकट्य हो रहा है, वह अपनी अनन्य निष्ठा के साथ विश्वमंगल में कार्यरत है इसका मुझे आनंद है। हमें भी नित्यनूतन रहना हो तो क्या करना चाहिए? आपके आशीर्वाद प्राप्त कर हम ऐसा क्या करे कि नित्यनूतन बने रहे? अपना शरीर भले ही थके, शरीर के धर्म के कारण, पर अपने चित्त की दशा जो पूज्यश्री ने कहा ऐसे आनंद के साथ जुड़ी है वह यदि टूटे तो अन्याश्रय माना जाय। बाप, तो क्या करेंगे? बड़ौदा आऊं तब यहां एक चौपाई याद आती है -

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाई न जेहिं परलोक संवारा।।

हम मनुष्यधारी, पूजनीय आचार्य के चरणों में बैठकर सात मर्यादाओं का पालन करे जिससे हम नित्यनूतन और तरोताज़ा रह सके। सूरज हररोज नया ही ऊगता है। नदी का बहता प्रवाह ताज़ा ही रहता है। दीपज्योति नव प्रकाश ही फैला रही है। मानव क्यों मुर्झाय? मानव बासी कैसे हो सकता है? जब भगवान वेद हमें कहते हो -

सप्तमर्यादा: कवयस्ततक्षु:।

इस पूज्य चरण ने समग्र वल्लभी परंपरा में, पुष्टिप्रवाह में जिस मर्यादा का, सात मर्यादा का जतन कर दृष्टांत रखे हैं। हमारे लिए ये कौन सी सात मर्यादाएं हैं? वेददर्शन तो किया। आनंद मिला। क्या कहते हैं जानने के लिए थोड़ा पढ़ा। पर इन सात मर्यादाओं के बारे में जान न पाया। जिसके पालने से हम नित्य नूतन बन सकते हैं। हररोज़ नए विचार आए। मैं हंमेशा इन पूजनीयों की कृपा से, आशीर्वाद से कहता रहता हूं कि मूल बराबर रहना चाहिए। फूल तो हररोज़ नया खीलना ही चाहिए। मूल भंग न हो। फूल चुन लिया जाय तो फल नया खिले इसी तरह विचार, आचार, व्यवहार की ताज़गी कौन-सी सात मर्यादाओं के पालन से आ सकती है? 'रामचरित मानस'को इससे जोड़ुं तो सरलता रहेगी। पर इसका अवकाश भी नहीं है। इतने पूजनीय चरणों की सन्निधि हमें प्राप्त हुई है तब वह सात मर्यादाएं कौन-सी जो हमें नित्यनूतन रख सके? जितना मैंने अवलोकन किया है। शास्त्र-धर्मग्रंथ पढ़े नहीं जाते पर अवलोकन करना चाहिए। पठन और अवलोकन में काफी अंतर है। परीक्षा में पास होने के लिए पढ़ना पड़ता है, जीवन के ऊर्ध्वगमन के लिए अवलोकन होता है। गुजराती में कवि अखा ने तीखी जबान में कहा है। उसकी एक पंक्ति मुझे पसंद है, 'अखाए आ पद अवलोकियुं।' मैं सोचूं कि इस आदमी ने पढ़ा नहीं पर अवलोकन किया, दर्शन किया।

वे कौन-सी सप्त मर्यादा है जिसके पालन से हम नित्य नूतन रह सके? शायनाचार्य भगवान का मत मुझे मेरे निकट लगा। हमें नदी के प्रवाह की तरह तरोताज़ा रहना हो तो बाप, वेद भगवान सात मर्यादा बताते हैं। 'यह नहीं करना, नहीं करना' के अर्थ में भगवान शायनाचार्य ने यह बात कही। हमें आत्मीय लगती है। हम ईमानदार हो तो कर सकते हैं। ईमानदारी खो बैठे तो क्या कर सके? पूज्य चरण यह सब कर सके।

मुझे एक जगह अनुभव हुआ। पूरा दिन प्रवास कर एक भाविक के यहां मुकाम किया। भोजन लिया। वहां रैनबसेरा था। मुझ से बोलने के लिए आग्रह हुआ। दस-पंद्रह लोग बैठे थे। मैंने कहा, 'क्या कहूं?' तो कहने लगे 'नहीं, कुछ तो कहना होगा।' उनके यहां भोजन किया हो, रात भी वहीं काटनी थी! साहब, मैं डेढ़ घंटा बोला। मुझे लगा मैं क्यों बोले जा रहा हूं? भाव के कारण बोला। मुझे भजिए खिलाये थे! कर्ज से मुक्त जो होना था। भगवन्, डेढ़ घंटे तक बोला। यह बिलकुल अतिशयोक्तिमुक्त बात है। परिवार के मुखिया ने कहा, 'बापू, आपने कहा बिकुल ठीक है। पर हम तो संसारी है न? इनमें से हम कुछ नहीं कर सकते।' अरे, मैंने कहा, पहले से यह कहा होता तो मैं सो गया होता! मैं बिना टेबलेट खाए सो जाता हूं। यह अपनी अप्रमाणिकता है। बाप, जीजी के अमृत महोत्सव के अवसर पर हमारे लिए सात मर्यादाओं का पालन अमृतवचन है।

एक, मद्यपान न करना। यहां कोई नहीं करता। भविष्य में भी हम गलत रास्ते पर न जाए। मद्य कई प्रकार के होते हैं। ध्यान रखना है कि कितने-कितने मद्य पीकर हम बैठे हैं। शायद भगवान वेद इस तरह भी हमें कहता हो कि यह नहीं करना चाहिए।

दूसरा, द्यूत का त्याग। इसीके लिए मानो सावन का महीना रिज़र्व रखा हो! लोग जन्माष्टमी भी नहीं छोड़ते! द्यूत माने ताश का खेल! आज विकसित जगत द्यूत में जिस तरह विकसित हो रहा है, चाहे जितने प्रकार हो, मुबारक! बाप, मुझे तो यही कहना है किसी से भी खेल, तमाशा नहीं करना चाहिए। ऐसे ताश न डाले। सामनेवाला ज़ख्मी हो ऐसे जूए से मुक्त रहना है। मर्यादा में रहना है। यह हमारे ज्यादा निकट है।

वृंदावन में कथा थी। एक ब्रजवासी ने मुझ से पूछा, 'आप किसे अधिक अहोभाव से देखते हैं, राधा या मीरांबाई को?' मैं क्या कहूं? व्रज में बैठकर राधा के बदले मीरां का नाम लूं तो कथा अधूरी रखकर लौट आना पड़े! कुछ ऐसा-वैसा कह बैठूं तो? मैंने कहा वह तो आह्लादिनी शक्ति है। उनकी कृपा, उनका आशीर्वाद-सान्निध्य यह तो हमारे उपर बरस ही रहा है पर अनुभव की दृष्टि से मीरां निकट लगती है। प्रादेशिक भाषा, भाव के कारण निकट है। अत: ये सूत्र मुझे ज्यादा नज़दीक लगते हैं।

तीसरी मर्यादा है शिकार न करना। हम कहां शिकार करते हैं? महाराज मृगया करने जाते हैं, पर अब तो यह भी नहीं रहा। कभी-कभी कोई करता है और फंस भी जाता है। केवल पशु के शिकार की बात नहीं है। शिकार न करना माने किसी का अपमान नहीं करना। किसी के तेज का वध नहीं करना चाहिए। हम ठगे जाए, कोई बात नहीं। मुझे कई लोग कहते हैं, आप भरोसे की बात बहुत करते हैं। मैंने कहा, मैं तो परंपरा और भाव का जतन करता हूं। सूरदासजी ने भी कहा है, 'दृढ इन चरनन केरो भरोसो ...' बिना भरोसा कैसे जीये? पर हमें कितने ठग जाते हैं! उसने मुझे ठगा है इसका भी आनंद लेना चाहिए। मैंने तो उसे ठगा नहीं है न? यह तीसरी आज्ञा, मर्यादा है शिकार न करना।

जो हम रोजमर्रा की ज़िन्दगी में करते हैं वह मारपीट किसी के साथ नहीं करनी चाहिए। कई बेकार लोग जिनके पास कोई काम नहीं होता तो मारपीट करेते हैं। सौराष्ट्र का किस्सा प्रसिद्ध है कि पांच-सात वृद्धा बैठी थी और रोये जाती थी। कोई महेमान आया तो पूछा कि, 'क्यों रोती है, माताजी?' जवाब मिला, 'कुछ काम नहीं था तो लगा थोड़ा-सा रो लूं।' बिना वजह की मारामारी!

ऐसी स्थिति आए तो बाप, हंसकर बात करनी चाहिए। मुस्कुराकर बात करनी चाहिए।

मैं कच्छ जा रहा था। दो लोग मोटरसाईकल पर बहुत स्पीड से आ रहे थे। मेरे ड्राईवर को पता था कि स्पीड मुझे भी पसंद है। वह भी ज्यादा स्पीड में था। इतने में मोटरसाईकल और मेरी गाडी को छू लेने में एक बाल जितना ही फासला रह गया था। पर सब संभल गया। पर उन दोनों की नज़र ठीक नहीं लगी। मुझे लगा अब कुछ होकर रहेगा। अब क्या किया जाय? मेरे ड्राईवर की भी थोड़ी गलती थी। ज्योंही नजदीक आया मैंने शीशा ऊतारकर मुस्कुराकर पूछा, 'कहो भाई, ठीक तो हो न।' तो कहा, 'मोरारिबापू है! जाईए, जाईए। जाने दीजिए। जाने दीजिए।' मुस्कुराहट से मारपीट टल गई। कितना अच्छा नतीजा मिला! पड़ौसी का छोडिए। घर में भी हंसना सीख जाय तो कई प्रोब्लेम पूरे हो जाय। ऐसा मुझे लग रहा है।

शिकार न करना, मारपीट नहीं करनी और अमुक कार्यों के लिए पूज्य जीजी सतत प्रयत्नशील है कि नारीसमाज, मातृशरीर इसका उत्कर्ष कैसे हो, वह कैसे पीड़ामुक्त हो। उसकी स्वाधीनता, सन्मान का जतन कैसे हो इसके लिए भी सतत चिंतित रहती है। यह पांचवीं मर्यादा है कि कभी भी किसी नारी का अनादर नहीं करना चाहिए। उसका अपमान नहीं करना चाहिए। मातृशरीर की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। बस, बहुत हुआ! वैसे भी अब कहां ज्यादा चलता भी है!

छठ्ठी मर्यादा कठोरता का त्याग करना। जीभ, आंख, शारीरिक चेष्टा और मानसिक रूप से भी कठोर नहीं होना है। तुलसी की एक चौपाई है -

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ संतोष सदाई।।

कठोर नहीं होना है। मद्यपान, द्यूत, शिकार, मारपीट, नारी का अनादर और कठोरता सब छोडिए। सातवां सूत्र, हम निंदा न करें। निंदा सुननी ही नहीं। ऐसी सभा जिसमें बैठना ही पड़े और उठ खड़े हो तो भी अविवेक है। किसी की निंदा होती हो तो विवेकपूर्वक विषयांतर करवाना चाहिए। किसी की निंदा होती हो उसमें हिस्सा नहीं लेना चाहिए।

मुझे ऐसा लग रहा है इन सात मर्यादाओं का पालन यदि हम करे तो 'नवो नवो भवति जाय मानव ...' हम रोज़ नए, स्फूर्त श्रममुक्त रह सके और इनके पालन के लिए यदि शरणागति और भगवन्नाम या कोई प्रभु का मंत्र, किसी जप का, अनुसंधान होगा तो मुझे लगता है कि इस देश का साहित्यकार, संगीतकार, विचारक-दार्शनिक थक जाय यह समाज को मंजूर नहीं होगा। इस देश का वक्ता थकना नहीं चाहिए। उसे सतत हरिगुण गाना चाहिए। ऐसी प्रेरणा अविरत प्रयत्नशील ऐसे पूज्यचरणों में से हम प्राप्त करें और हम भी रोज़ नए बने रहे ऐसी प्रार्थना करें। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। कहीं कथा में व्यस्त होता तो शायद न आ पाता। कहीं दूर होता तो पहुंच पाना मुश्किल होता। मेरा न आना आपके ध्यान में रहता पर मेरी ग्लानि मिटती नहीं। मैं यहां आ सका इसका मुझे अति आनंद है। पूज्यचरण और इतने सारे पूज्यचरणों के दर्शन हो और पूजनीय जीजी के इस अमृत महोत्सव अवसर पर मुझे अत्यंत आनंद हो रहा है। आपके आशीर्वाद, मार्गदर्शन हमें निरंतर प्राप्त हो ऐसी हम प्रार्थना करते हैं।

('पूज्य इन्दिराबेटीजी(जीजी) के अमृत महोत्सव प्रसंग पर बड़ौदा (गुजरात)में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक २४-०८-२०१३)

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।।
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछू अहई।।

●

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

●

मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।
बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू।।

●

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना।।
समाचार सबकहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए।।

●

छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना।
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगें चले सील गुन धामा।।

●

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना।।

●

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछत्र न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म।।

।। जय सीयाराम ।।